INTERNATIONAL MAGAZINE
RNI No. 64884/96
ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ ।।
आतम पसारा करण हारा प्रभ बिनां नहीं जाणीऐ ।।
आत्म मार्ग
May 2019
भले अमरदास गुण तेरे तेरी उपमा तोहि बनि आवै ।।

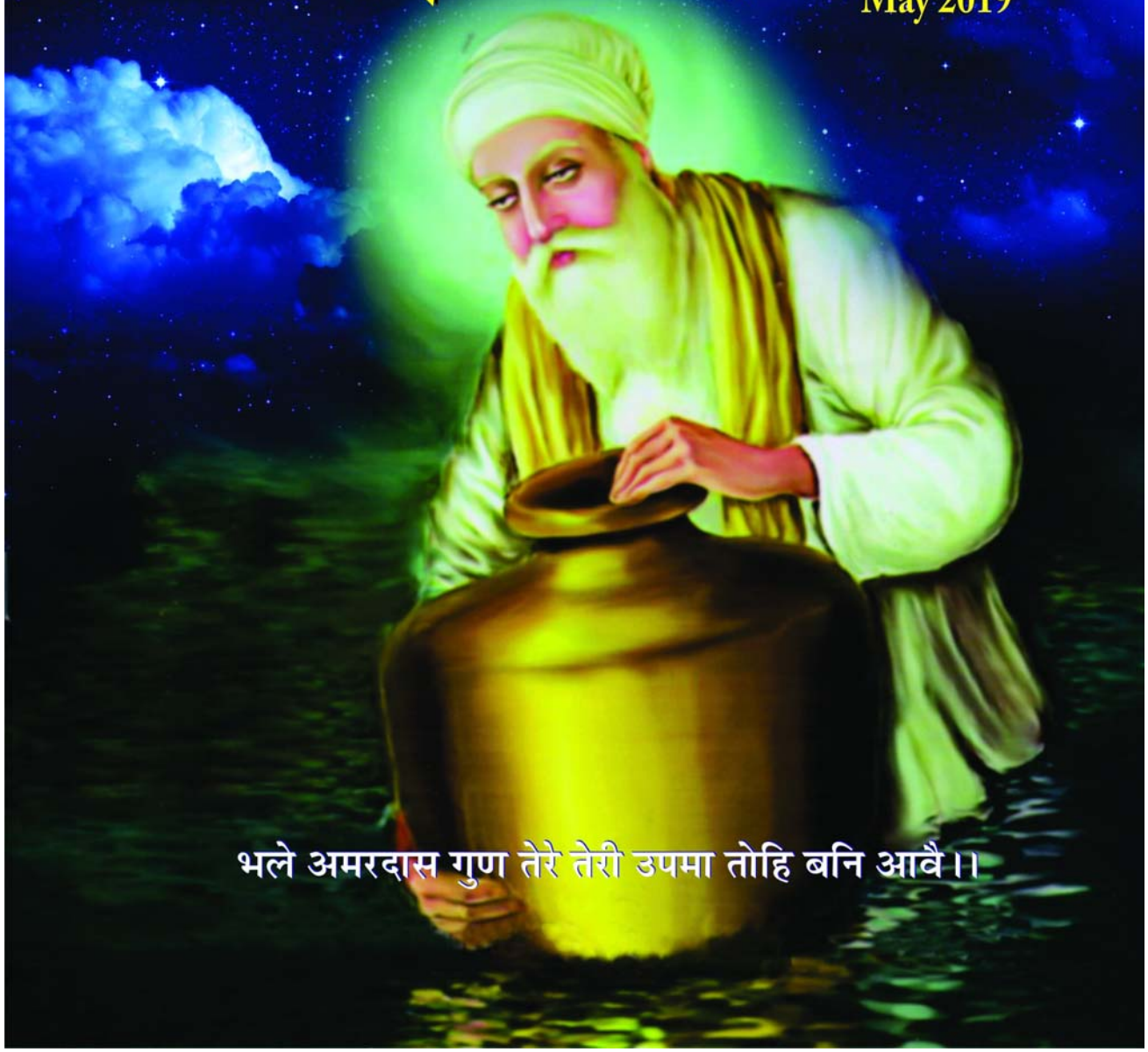

रतवाड़ा साहिब - बैसाखी समागम

सन्त बाबा लखबीर सिंह जी कीर्तन द्वारा निहाल करते हुए तथा विशाल संख्या में कीर्तन श्रवण करते हुए श्रद्धालुजन

आत्म मार्ग

वर्ष चौबीसवां - अंक चौथा, मई 2019

गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब

संचालक

श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी महाराज (ब्रह्मलीन)
तथा संत माता (बीजी) रणजीत कौर जी (ब्रह्मलीन)

चेयरमैन	एडिटर-इन-चीफ
सन्त बाबा लखबीर सिंह जी	सन्त बाबा हरपाल सिंह जी
प्रबन्ध सम्पादक	**मुख्य सम्पादक**
भाई (डा.) सुखविंदर सिंह	डा. जगजीत सिंह

मासिक पत्रिका न पहुँचने सम्बन्धी पूछताछ

यदि आपको माह की 15 तारीख तक आत्म मार्ग पत्रिका प्राप्त नहीं हो पाती है तो आप कृप्या निम्नलिखित सम्पर्क नम्बरों पर कार्यलय समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक सम्पर्क करने की कृपा करें -

सम्पर्क न. - **84378-12900, 94172-14391, 94172-14379**

Email : atammarg1@yahoo.co.in

Postal Address for any Enquiry, Money Order's :

'ATAM MARG' MAGAZINE
Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib (New Chandigarh) P.O. Mullanpur Garibdas, Teh. Kharar, Distt. S.A.S. Nagar (MOHALI) - 140901, Pb. India

SUBSCRIPTION - शुल्क (देश)

वार्षिक	आजीवन सदस्यता	प्रति कापी
300/-	3000/-	30/-
320/-	3020/- (For outstation cheques)	

SUBSCRIPTION FOREIGN (विदेश)

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
Canada	80 Can $	800 Can $
Australia	80 Aus $	800 Aus $

प्रकाशन के समस्त अधिकार सुरक्षित हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक सन्त बाबा हरपाल सिंह जी ने 'आत्म मार्ग' जै आफ सैट प्रिंटर्ज, 905 इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज़-2, चण्डीगढ़ से छपवा कर मुख्य कार्यालय 'आत्म मार्ग' रतवाड़ा साहिब, डाकखाना मुल्लांपुर, तहसील खरड़, एस.ए.एस. नगर (मोहाली), पंजाब से प्रकाशित किया।

Please visit us on internet at :-
For Atam Marg Email : atammarg1@yahoo.co.in,
Website & Live video -

www.ratwarasahib.in
www.ratwarasahib.org } **(Every sunday)**

Email: sratwarasahib.in@gmail.com

विदेशों में आत्म मार्ग की शाखाएँ

अमेरिका - बाबा सतनाम सिंह अटवाल
फोन तथा फैक्स : 001-408-263-1844

कैनेडा - भाई सरमुख सिंह पंनू, वैनकूवर
फोन : 001-604-433-0408

भाई तरसेम सिंह बैंस - मोबाइल 001-604-862-9525
फोन : 001-604-288-5000

भाई जसबीर सिंह राणू - फोन : 001-604-589-9189

इंगलैंड - बीबी गुरबख्श कौर तथा भाई जगतार सिंह जग्गी
फोन:0044-121-200-2818 फैक्स :0044-121-200-2879,

भाई अरविंदर सिंह (राज) मोबाइल:0044-7968734058

आस्ट्रेलिया : बीबी जस्प्रीत कौर: मोबाइल-0061-406619858

रतवाड़ा साहिब की संस्थाओं के सम्पर्क नम्बर

* आत्म मार्ग मैगज़ीन (पंजाबी, हिन्दी तथा अंग्रेजी)
9417214391, 9417214379, 8437812900

* गुरू गोबिंद सिंह विद्या मन्दिर सीनियर सैकण्डरी स्कूल **(CBSE) - 0160-2255003**

* माता साहिब कौर मुफ्त सिलाई सैंटर - **96461-01996**

* सन्त वरियाम सिंह मैमोरियल पब्लिक सीनियर सैकण्डरी स्कूल **(PSEB)** अंग्रेजी माध्यम - **95920-55581**

* सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल (मुफ्त)
98786-95178, 92176-93845

* इंटरनैशनल डिवाइन स्कूल आफ़ नर्सिंग -
94172-14382

* इंटरनैशनल डिवाइन कालेज आफ़ ऐजूकेशन (बी. एड.)
94172-14382

* अकाल वृद्ध आश्रम (मुफ्त) **98157-28220**

विशेष जानकारी के लिए

श्री मान जी	-	98551-32009
श्री आखण्ड पाठ साहिब बुकिंग	-	94647-12900
आडियो-वीडियो लाईब्रेरी	-	98728-14385, 98555-28517
केवल टी.वी. नेटवर्क	-	94172-14385

अन्य सम्पर्क नम्बर

98889-10777, 96461-01996, 9417214381

विषय-सूची

1.	सम्पादकीय *भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह*	5
2.	बारहमाहा *सन्त बाबा वरियाम सिंह जी*	6
3.	श्री गुरू अरजन देव जी, योगिराज को उपदेश *सन्त बाबा वरियाम सिंह जी*	9
4.	भाई जमाल जी को गुरू हरिगोबिन्द साहिब जी के द्वारा अनुभवी मार्ग दर्शन *सन्त बाबा वरियाम सिंह जी*	18
5.	तिन प्रभ जब आइस मुहि दीआ।। ... *सन्त बाबा हरपाल सिंह जी*	29
6.	नूरानी मिलाप - 11 *भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह*	34
7.	वारां भाई गुरदास जी *डा. भाई बीर सिंह जी*	37
8.	भाई नन्द लाल जी	39
9.	भले अमरदास गुण तेरे तेरी उपमा तोहि बनि आवै।। *भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह*	41
10.	गुरू नानक आगमन *डा. भाई बीर सिंह जी*	45
11.	गुरू नानक देव जी की प्रमुख रचना 'आसा दी वार' *डा. जगजीत सिंह*	50
12.	स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार *डा. स्वामी राम जी*	53
13.	विशेष जानकारी - बैंक खाता, आत्म मार्ग मैगजीन सदस्यता प्रारूप, अस्पताल जानकारी, तथा पुस्तक सूची	55

सम्पादकीय

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

जा कै मनि गुर की परतीति ॥
तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥ अंग - 283

आत्म मार्ग के पथिक बनने के लिए प्रतीति की अति आवश्यकता है। यह प्रतीति अकेली नहीं आती है बल्कि प्रतीत उत्पन्न होने से पहले जिज्ञासु के मन में विश्वास, प्यार व सम्मान का आना आवश्यक है। इनके आने से श्रद्धा उत्पन्न होती है। प्रतीति तक पहुँचने के लिए श्रद्धा के पुल पर से गुजरने के बाद ही पार हुआ जा सकता है लेकिन समस्या यह है कि मनुष्य की श्रद्धा दृश्यमान संसार पर ही बनी रहती है क्योंकि यह संसार कर्मेन्द्रियों की पकड़ में है। संसार का आकार है और आकार वाली वस्तु को नापा व तौला जा सकता है लेकिन परमात्मा या वाहिगुरू तो निराकार है, आकार रहित है।

अतुलु अतुलु अतुलु नह तुलीऐ भगति वछलु किरपाए॥
अंग - 820

आदि न अंतु बिअंतु है
आपे आपि न आपु गणाइआ॥ वार 18/7

नि:शंक रूप से समस्त आकार उसी के हैं -

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ॥
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ ॥
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ ॥
करि आसणु डिठो चाउ ॥ अंग - 463

भगत रविदास जी के बचनों के अनुसार -

बिनु देखे उपजै नही आसा ॥
जो दीसै सो होइ बिनासा ॥ अंग - 1167

दृश्यमान संसार में ही लिप्त रहना, मनुष्य का स्वभाव है। जन्म-जन्मान्तरों से दृश्यमान में लिप्त मन अदृश्य अस्तित्व को महसूस कैसे करे? और यही जिज्ञासुजनों की समस्या है। इसके हल के लिए गुरू जी के वचनों पर विश्वास करना आवश्यक है -

जह जह पेखउ तह हजूरि दूरि कतहु न जाई ॥
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई ॥ 1 ॥
अंग - 677

जत्र तत्र दिसा विसा हुइ फैलिओ अनुराग॥
जापु साहिब

गुरु मेरै संगि सदा है नाले ॥
सिमरि सिमरि तिसु सदा समाले ॥ अंग - 394

इत्यादि अनेकों प्रमाण गुरवाणी में मिलते हैं, जिनके ऊपर विचार करके आगे बढ़ा जाना चाहिए।

आगाहा कू त्राघि पिछा फेरि न मुहडड़ा ॥
अंग - 1097

श्रद्धा अपनी-अपनी होती है। अनुभवी पुरुषों का फुरमान है कि श्रद्धावान को वह दिखाई पड़ता है जो कि अन्य लोगों को दिखाई नहीं पड़ता है -

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ
इक वसतु अनूप दिखाई ॥
गुर गोविंदु गोविंदु गुरु है नानक भेदु न भाई ॥
अंग - 442

श्रद्धावान की अवस्था का जिक्र करते हुए गुरू रामदास महाराज जी फुरमान करते हैं कि -

मै मनि तनि प्रेमु अगम ठाकुर का
खिनु खिनु सरधा मनि बहुतु उठईआ ॥
गुर देखे सरधा मन पूरी
जिउ चात्रिक प्रिउ प्रिउ बूंद मुखि पईआ ॥
अंग - 836

प्रेम, श्रद्धा का अभिन्न अंग है। श्रद्धा में गुरू दर्शनों की लालसा, आशा व विश्वास होता है। दर्शनों की लालसा का पूरा हो जाना ही श्रद्धा की कृपा मानी गई है -

इछ पुनी सरधा सभ पूरी ॥
रवि रहिआ सद संगि हजूरी ॥ अंग - 289

लेकिन यह प्रेम व श्रद्धा उस वाहिगुरू जी की बदौलत ही है।

भगत जना कउ सरधा आपि हरि लाई ॥ अंग - 494

जब श्रद्धा शिखर पर पहुँच जाती है तो फिर भक्ति का जन्म होता है। भक्ति करने वाला परमात्मा के साथ जुड़ता है। (भय + गति) परमात्मा के प्यार व भय में रहकर की

(शेष पृष्ठ 44 पर)

जेठि

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीऐ जिसु अगै सभि निवंनि॥
हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि॥
माणक मोती नामु प्रभ उन लगै नाही संनि॥
रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि॥
जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि॥
जो प्रभि कीते आपणे सेई कहीअहि धंनि॥
आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि॥
साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि॥ अंग - 134

वाहिगुरू सब का रखवाला, पालनहार, अन्नदाता, सब से बड़ा, घट-घट में व्याप्त, जल थल लिवलीन कण-कण में फैला हुआ, महान, अस्तित्व, सत-चित्त-आनन्द एवं प्रिय है। गुरू महाराज जी जेठ के महीने में इस जीव को, वाहिगुरू जी जो सबसे बड़ा है, जिसके आगे सारी सृष्टि के अनेक भागों, अनेक खण्डों, ब्रह्माण्डों के जीव नमन करते हैं, उसके साथ मिलन के लिये संकेत करते हैं। प्रभु मिलाप, केवल प्यार के कारण ही हुआ करता है और कोई भी साधन प्रभु मिलाप में समरथ नहीं होता। ऐसे हरि के साथ मिलाप करके उसकी सत्यता को हर समय महसूस करना और प्यार के आकर्षण में हर समय खिंचे रहना, इसको मिलाप कहते हैं। महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यदि कोई सज्जन वाहिगुरू जी की शरण में चला जाए तो यमदूतों की ताकत नहीं है कि वह ऐसे प्रेमी को बान्ध सकें। वे बांधकर धर्म राज के मण्डल में उस जीव को नहीं ले जा सकते, बल्कि धर्मराज को तो हुक्म है कि जो परमेश्वर के प्यार में लीन हो, उसकी वह सेवा करे -

धरमराइ नो हुकमु है
बहि सचा धरमु बीचारि।
दूजै भाइ दुसटु आतमा
ओहु तेरी सरकार।
अधिआतमी हरि गुण तासु
मनि जपहि एकु मुरारि।
तिनकी सेवा धरमराइ करै
धंनु सावरणहारु॥ अंग-38

धर्मराज को तो यहाँ तक हुक्म है कि प्रभु प्यार में लीन पुरुषों को आदर सहित, सत्कार पूर्ण शब्द प्रयोग करके, उनकी आवाभगत करे। उसको यम के सामने पेश नहीं होना पड़ता -

तुधु सालाहनि तिन धनु पलै
नानक का धनु सोई॥
जे को जीउ कहै ओना कउ
जम की तलब न होई॥ अंग - 1328

ऐसा ही फ़रमान है कि जो परमेश्वर के प्यार में वचनों की पालना करते हैं, उनकी शोभा धर्मराज की दरगाह में होनी शुरू हो जाती है और धर्मराज, ऐसे साधुओं तथा परमेश्वर से प्यार करने वालों की सेवा करता है -

साध संगि धरम राइ करे सेवा।
साध कै संगि सोभा सुरदेवा। अंग - 271

सो इस प्रकार जो सच्चे सांई की शरण में हैं, जिनके हृदय में उसका प्यार रम रहा है, उन्हें धर्मराज के पास बान्ध कर नहीं ले जाया जा सकता। धर्मराज के पास केवल वही ले जाये जाते हैं, जिन्होंने मनुष्य जन्म प्राप्त करके, मन के

पीछे लगकर, प्रभु को भूल कर, खींचतान, ठगी, चोरियों, धोखे-पाखंडों, विषय विकारों में अपना जीवन व्यतीत किया है। प्रभु प्रेमियों के पास मानक मोतियों से कीमती 'नाम रतन' हुआ करता है, जिसकी विशेषता यह है कि उसको पाकर खोया नहीं जा सकता। इस नाम के ऊपर कोई टैक्स नहीं लगता, न ही इस नाम धन को कोई चुरा सकता है, न ही आग में जल सकता है, न ही पानी में डूब सकता है; यह हृदय में बस जाया करता है। नाम की सुगन्धि सारे खम्डों-ब्रह्माण्डों में फैल जाती है और हर जगह पर नाम के व्यापारी का आदर हुआ करता है -

धंनि धंनि कहै सभु कोइ।
मुख ऊजल हरि दरगह सोइ॥ अंग - 283

हरि धनु रतनु जवेहरु माणकु
हरि धनै नालि अंम्रित वेलै वतै
हरि भगती हरि लिव लाई॥
हरि धनु अंम्रित वेलै वतै का बीजिआ
भगत खाइ खरचि रहे निखुटै नाही॥
हलति पलति हरि धनै की भगता कउ मिली वडिआई॥
हरि धनु निरभउ सदा सदा असथिरु है साचा
इहु हरि धनु अगनी तसकरै पाणीऐ जमदूतै
किसै का गवाइआ न जाई॥
हरि धन कउ उचका नेड़ि न आवई
जमु जागाती डंडु न लगाई॥ अंग - 734

सांसारिक धन इक्टठा करने वालों के लिए गुरू महाराज जी फरमान करते हैं कि एक भी वस्तु साथ नहीं जाती, वहाँ जाकर इस धन में जीवन बिताने वाले पछताते हैं और अनेक नरकों में पड़े-पड़े हाय-हाय करते हैं क्योंकि सांसारिक धन पाप के बिना इक्टठा नहीं हुआ करता। इसको इक्टठा करने के लिये बहु प्रपंच करने पड़ते हैं -

इसु जर कारणि घणी विगुती
इनि जर घणी खुआई।
पापा बाझहु होवै नाही
मुइआ साथि न जाई॥ अंग - 417

साकती पाप करि कै बिखिआ धनु संचिआ
तिना इक विख नालि न जाई।
हलतै विचि साकत दुहेले भए
हथहु छुड़कि गइआ अगै पलति साकतु
हरि दरगह ढोई न पाई॥ अंग - 734

हरि के नाम का धन जो जीव इक्टठा करता है, इसका जो सच्चा शाह है, वह वाहिगुरू जी आप ही है। यह सारा संसार नाम का बनजारा बन कर आया हुआ है -

सचु साहु हमारा तूं धणी
सभु जगतु वणजारा राम राजे।
सभ भांडे तुधै साजिआ
विचि वसतु हरि थारा।
जो पावहि भांडे विचि वसतु सा निकलै
किआ कोई करे वेचारा।
जन नानक कउ हरि बखसिआ
हरि भगति भंडारा॥ अंग - 449

इसु हरि धन का साहु हरि आपि है संतहु
जिस नो देइ सु हरि धनु लदि चलाई।
इसु हरि धनै का तोटा कदे न आवई
जन नानक कउ गुरि सोझी पाई॥ अंग - 734

सो गुरू महाराज जी फ़रमाते हैं -

माणक मोती नामु प्रभ
उन लगै नाही संनि।
रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि।
जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि।
जो प्रभि कीते आपणे सेई कहीअहि धंनि।
अंग - 134

जिन्होंने गुरमति अनुसार कठिन साधना करके, नाम धन प्राप्त किया है, उस धन को यमदूत भी किसी भी ढोंग से छीन नहीं सकते। दूसरा धन दुनियां का, उसको चोर लूट लेते हैं। दीवार में सेंध लगाकर, धन चुराकर ले जाते हैं पर हृदय में रमा हुआ धन, प्राणों में बसा हुआ नाम धन, कोई नहीं छीन सकता। उसका फल बताते हैं -

एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है
बाहुड़ि जनमि न आवा॥ अंग - 795

वाहिगुरू जी महान आनन्द के स्त्रोत हैं। कोई ऐसी चीज़ नहीं, जो वाहिगुरू के पास न हो -

साचे साहिबा किआ नाही घरि तेरै।
घरि त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए॥
अंग - 917

ये खुशियां, आनन्द, जिन्होंने वाहिगुरू जी का पल्ला

पकड़ा है, तन मन से उसके पीछे लग गये हैं, और उसकी मर्ज़ी के साथ एक स्वर होकर, एक समान रस वृत्ति में रहकर, प्यार के मण्डल का आनन्द लूटते हैं; उनके लिये सभी सुख साधन उपलब्ध हैं -

जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि। अंग - 134

वाहिगुरू जो चाहते हैं, वही करते हैं। वह किसी से सलाह मशवरा नहीं करते, वरदान देते समय किसी का परामर्श नहीं लेते। वह भोला दाता, जो भी उससे जो कुछ मांगता है, वह देता ही रहता है।

देदा दे लैदे थकि पाहि।
जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥ अंग - 2

पर जीव का ऐसा स्वभाव है कि इसकी दे, दे, और दे, दे, दे; यह सारी जिन्दगी खत्म नहीं होती। दी हुई वस्तुओं में इसका चित्त लगता है, प्रभु को हर क्षण भूला रहता है। यह स्वार्थी जीव, दिये गये पदार्थों में ही मस्त रहता है, पर फिर भी वह दिये जाता है -

आखहि मंगहि देहि देहि
दाति करे दातारु॥ अंग - 2

जिनका अन्तरात्मा से वाहिगुरू जी के साथ अटूट प्यार है, उसकी मर्ज़ी में रहकर वही कुछ करता है जो वाहिगुरू जी के मन को भाता है। इसलिए ऐसे भाग्यशाली जिनको परमेश्वर ने अपना बना लिया है, उनका संसार में आना धन्य है, इनको सारा संसार धन्य-धन्य कहता है, दरगाह में भी उनका आदर होता है -

रे रे दरगह कहै ना कोऊ।
आउ बैठु आदरु सुभ देऊ॥ अंग - 252

इन महावाक्यों में गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है कि जो प्रभु से प्यार नहीं करते, वह अपने हऊमै के अधीन हुये, वरदान प्राप्त करने की कामनायें करते हैं। परमेश्वर के साथ मिलने की इच्छा नहीं रखते पर उन्हें यह भूल जाता है कि प्रभु ने अपने घर का दरवाजा बंद करके, चाबी महापुरुष को सौंप दी है और जब तक वह महापुरूषों की शरण में नहीं आता और अपना तन मन धन नहीं सौंप देता, तब तक उसको प्रभु के द्वार की चाबी की प्राप्ति नहीं होती। फ़रमान है -

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ
ताला कुंजी गुर सउपाई।
अनिक उपाव करे नही पावै
बिनु सतिगुर सरणाई॥ अंग - 205

बिनु सबदै अंतरि आनेरा।
न वसतु लहै न चूकै फेरा।
सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुल्है नाही
गुरु पूरै भागि मिलावणिआ॥ अंग - 124

गुरमत में यह स्पष्ट करके बताया गया है कि सतगुरू के बिना नाम प्राप्त नहीं हो सकता। सतगुरू का मिलाप पूर्व सत कर्मों के बिना नहीं हो सकता। धुर दरगाह से भाग्य के कर्म लिखे जाते हैं, जिनके कारण पूरा सतगुरू मिलता है। यदि मिल जाये तभी नाम प्राप्त होता है -

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ
बुझहु करि वीचारु।
नानक पूरै भागि सतिगुरु मिलै
सुखु पाए जुग चारि॥ अंग - 649

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे
भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक
जनम जनम की सोई जागी॥ अंग - 204

जिन मसतकि धुरि हरि लिखिआ
तिना सतिगुरु मिलिआ राम राजे। अंग - 450

सो इसलिये जो अपने आप प्रभु की प्राप्ति करना चाहता है, नहीं हो सकती और इसके वियोग में केवल रोना ही पल्ले पड़ता है -

आपण लीआ जे मिलै
विछुड़ि किउ रोवंनि॥ अंग - 134

जब तक साधु की संगत प्राप्त नहीं होती, तब तक यह विश्वासहीन पुरूष किसी किनारे तक नहीं पहुँच सकता। साधु की संगत मिलने पर ही प्यार के मण्डल में पहुँचा जा सकता है और प्यार का आनन्द अनुभव कर सकता है। जिसके भाग्य में लिखा हो, उसको हरि रूप आनन्ददायक मालिक प्राप्त होता है, उसको यह जेठ का महीना चाहे कड़कती धूप, गर्म लू कर के अति दुखी करता है, पर आनन्ददायक होता है। इसलिये हम गुरू महाराज जी के बताये हुये मार्ग पर चलकर, मनुष्य जन्म का, जेठ महीने की तपस से बचकर परम शान्ति का आनन्द, साधुओं की संगत प्राप्त करके, गुरू की रजा में रहकर प्राप्त करें।

श्री गुरू अरजन देव जी, योगिराज को उपदेश

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

सतिनामु श्री वाहिगुरु,
धंन श्री गुरु नानक देव जीओ महाराज!

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ ॥
अंग - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ
परिआ तउ सरनाइ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥
अंग - 289

धारना - प्रभ सभ किछु तेरा जी,
मै किछु नाही-मै किछु नाही।

मै नाही प्रभ सभु किछु तेरा ॥
ईघै निरगुन उघै सरगुन
केल करत बिचि सुआमी मेरा ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
नगर महि आपि बाहरि फुनि आपन
प्रभ मेरे को सगल बसेरा ॥
आपे ही राजनु आपे ही राइआ
कह कह ठाकुरु कह कह चेरा ॥ 1 ॥
का कउ दुराउ का सिउ बलबंचा
जह जह पेखउ तह तह नेरा ॥
साध मूरति गुरु भेटिओ नानक
मिलि सागर बूंद नही अन हेरा ॥ अंग - 827

कतहूं सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ,
कतहूं अचिंत हुइकै सोवत अचेत हो॥
कतहूं भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख,
कहूं महाँ दान हुइकै माँगिओ धन देत हो॥
कहूं महाराजन को दीजत अनंत दान,
कहूं महाराजन ते छीन छित लेत हो॥
कहूं बेद रीत, कहूं ता सिउ बिप्रीत,
कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सुरगुन समेत हो॥
त्वप्रसादि कबित

साधु संगत जी! अपनी चित्त-वृत्तियों को एकाग्र करो नेत्रों के द्वारा गुरू स्वरूप का ध्यान करो। कानों के द्वारा गुरवाणी को श्रवण करो, बुद्धि के द्वारा विचार करो और विचार के बाद उसे अपने हृदय में धारण करो। हम लोगों को सत्संग करते हुए बहुत लम्बा समय बीत चुका है, हमने बहुत कुछ सुना व गाया है। महाराज जी कहते हैं कि सालों के साल बीत गए हैं लेकिन हमें वह वास्तविक बात समझ में नहीं आ पाई है जिसे कि गुरु जी लेखे में मानते हैं। उस बात के अतिरिक्त अन्य सभी बातों को गुरू जी निरर्थक ही मानते हैं -

नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥
अंग - 467

यदि तुमने उस एक बात को जान लिया तो मानो सब कुछ ही जान लिया और यदि उस एक बात को नहीं जाना तो चाहे दुनिया भर के सारे ग्रन्थों को पढ़ डालो, पढ़-पढ़ कर ढेर लगा दो, गाड़ियाँ भर लो, डेढ़-डेढ़ सौ फुट ऊँचे किताबों के ढेर लगा डालो, तुम्हारा कुछ भी नहीं बन पाएगा। जब तक तुम उस एक बात को नहीं समझोगे तब तक तुम्हें कुछ भी प्राप्ति नहीं हो पाएगी। यह तो ठीक है कि सत्संग का फल कई करोड़ यज्ञों के बराबर तुम्हें प्राप्त हो जाएगा, इसके अतिरिक्त अन्य फल भी तुम्हें प्राप्त हो जाएँगे, अवश्य हो जाएँगे जैसे कि गुरवाणी का फुरमान है -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम ॥
अंग - 546

लेकिन जब तक तुम्हें वह 'एक बात' समझ में नहीं आ पाई तो फिर उसके मुकाबिले वे सभी फल कुछ भी महत्व नहीं रखते हैं। अब यह बात बड़ी ही हैरानीजनक है कि वह बात हमें समझ में नहीं आती है और अन्य सभी बातों को महाराज जी अहंभाव की श्रेणी में ही रखते हैं -

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ॥
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात ॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥
अंग - 467

अतः यदि वह एक बात समझ में आ जाए तो अन्य सभी बातें स्वतः ही समझ में आ जाएँगी। भारतवर्ष के जो

ऋषि-मुनि थे, नाम जपने वाले गुरसिक्ख व भक्तजन थे उनका ऐसा विचार है।

यहाँ पर मैं एक विनती करता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनना। जितने भी बड़े महापुरुष हुए हैं, वे सब किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़े थे और न ही किसी स्कूल में ही गए थे। हमारे शरीर के अन्दर एक **state of mind** विद्यमान है, उनके अन्दर भी हैं, वहाँ पर जाकर सारी विद्याओं का प्रकाश स्वत: ही हो जाता है, वहाँ पर पढ़ने की फिर कोई जरूरत ही नहीं रह जाती है, फिर तो सारे संसार की विद्याएँ अपने आप ही आ जाती हैं। उसका प्रकाश जिसके हृदय में हो गया, वह तो पढ़ा-लिखा है, बाकी जो पढ़ाई-लिखाई है, वह ठीक है, उसने अक्षरों की गिनती की है, अक्षरों को जोड़ा है, लेकिन वह कोई विशेष महत्व की बात नहीं है। इन अक्षरों के द्वारा दुनिया को कुमार्ग पर भी डाला जाता है और अपने लिए सद्मार्ग की तलाश भी की जाती है। इनके द्वारा संसार को शान्ति भी दी जाती है लेकिन अभी तक कोई बात बनी नहीं है, इसका कारण यह है कि अभी तक वह पढ़ाई आई नहीं है, जिसकी तरफ महाराज जी इशारा करते हैं। जब तक वह पढ़ाई आती नहीं है, तब तक सम्बन्धित व्यक्ति विद्वान नहीं कहलवा सकता है। एक होते हैं सबुद्धिजीवी और दूसरे होते हैं, कुबुद्धिजीवी। जो यह कुबुद्धिजीवी होते हैं, ये बहुत ही निम्न स्तर के साहित्य की रचना करते हैं। जो बुद्धिमान पुरुष होता है, वह सुख प्रदान करने वाली और बुद्धि प्रदान करने वाली चीज को पढ़ता है। इसके आगे शुरू होती है सन्तजनों की पढ़ाई। जहाँ तक माया जाती है, यह **matter** जाता है, वहाँ तक बुद्धि की सीमा है क्योंकि माया का विस्तार मही तत्व के द्वारा हुआ है, जिसे कि बुद्धि कहते हैं।

पहले मण्डल में आनन्दमयी कोष है, दूसरे मण्डल में बुद्धि का प्रकाश है, जिसे कि विज्ञानमयी कोष भी कहते हैं। इसके आगे होती है - आत्मविषयक बुद्धि। यह अन्य प्रकार की होती है। यह जिसे आ जाती है, वही इसे जानता है, अन्य कोई इसे जान ही नहीं सकता है। महाराज जी उसकी तरफ इशारा बार-बार करते हुए कहते हैं कि यदि वे अक्षर तुम्हारे अन्दर प्रकट हो गए फिर तो तुम सब कुछ ही हो अन्यथा यदि तुम पढ़े हुए भी हो तो भी -

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ॥
अंग - 140

जिसने अपनी वासनाओं पर ही नियन्त्रण स्थापित नहीं किया, फिर वह पढ़ा लिखा किस बात का है? अत: यदि हम इस बात को सीख लें, जान ले, जिसकी तरफ गुरू जी 1430 अंकों के माध्यम से हमें बताना चाहते हैं, तो फिर समझ लो कि हम सब कुछ ही प्राप्त कर गए। यदि वह एक बात हमारी समझ में नहीं आ पाई तो फिर गुरू जी कहते हैं कि फिर तो तुमने निरर्थक कार्यों में ही सारी जिन्दगी को बरबाद कर डाला। गुरू जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं-

धारना - लेखे तेरे ओ इक गल है,
होर हउमै झखणा झाख।

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ॥
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात ॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥
अंग - 467

यदि सारी जिन्दगी में भी इस बात को जान गया तो फिर तुम विजयी हो गए और यदि इस एक बात को नहीं जान पाए तो फिर तो चाहे सारे पुस्ताकलयों को ही पढ़ डालो, वह सब निरर्थक ही है क्योंकि पढ़ना लिखना तो संसार का एक कार्य है -

पड़णा गुड़णा संसार की कार है ....॥अंग - 650

इस प्रकार पढ़ते रहने से वह 'एक चीज' प्राप्त होने वाली नहीं है -

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ
निवलि भुअंगम साधे॥
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ
अधिक अहंबुधि बाधे ॥
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई
मै कीओ करम अनेका ॥
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै
दीजै बुधि बिबेका ॥ अंग - 641

यदि विवेक बुद्धि प्राप्त हो गई फिर तो वह पढ़ा-लिखा है अन्यथा वह मूर्खों की श्रेणी में ही माना जाएगा। अत: मैं बुद्धिजीवियों व विवेक की बात को बतला रहा था कि जहाँ पर हमारी यह बुद्धि समाप्त होती है उसके आगे फिर विवेक बुद्धि शुरू होती है। विवेक बुद्धि में पढ़ाई प्रत्यक्ष होती है, उसमें अन्धकार नहीं हुआ करता है। इस प्रकार से कई दिनों से एक विचार चल रही है कि गुरू पाँचवें महाराज जी सेवा करवा रहे हैं, सरोवरों की खुदाई के दौरान एक मठ निकल आया। उस मठ के अन्दर से एक योगी निकला। गुरू महाराज जी ने उसे जीवित कर लिया उसके श्वास दसवें द्वार में से नीचे आ गए क्योंकि उसे हजारों वर्ष बीत चुके थे। उसके

बाद उस योगी ने प्रश्न किया कि यह कौन सा युग है?

गुरू जी - यह कल्युग है।

योगिराज - किसका पहरा है?

गुरू जी - श्री गुरू नानक देव जी के पाँचवें स्वरूप गुरू अरजन पातशाह जी का।

योगिराज - नमस्कार! नमस्कार! धन्य हो महाराज! आप धन्य हो!

उस समय उसने गुरू महाराज जी के पास एक सवाल किया कि महाराज जी! मेरा एक सवाल है, जिसका उत्तर प्राप्त करने के लिए मैं इतनी देर समाधि में बैठा रहा।

धारना - दसीं मालका, इस जग दी कहाणी।

वह (योगिराज) विनती करता है कि महाराज जी! युग बीत गए हैं, उस समय त्रेता युग था और जो रावी दरिया है, वह यहाँ से जाया करता था, जहाँ पर स्थित एक मठ के अन्दर से आपने मुझे निकाला है। यह काफी ऊँची जगह थी और यहाँ पर हमारा आश्रम था, जहाँ पर कि मैं अपने गुरू के साथ रहा करता था। उस समय मैंने अपने गुरू के पास विनती की कि महाराज जी! मुझे भी आप ब्रह्मज्ञान की दात प्रदान करने की कृपा करो।

उस समय मेरे गुरू जी ने फुरमान किया कि ब्रह्मज्ञान की दात तुम्हें मेरे द्वारा प्राप्त नहीं हो पाएगी क्योंकि तुम्हें अभी द्वापर युग में जन्म धारण करने पड़ेंगे और उसके बाद कल्युग में जाकर जन्म धारण करना पड़ेगा। जब कल्युग के पाँच हजार वर्ष बीत जाएँगे तो उस समय श्री गुरू नानक देव जी अपने पाँचवें स्वरूप में होंगे और उनका नाम गुरू अरजन होगा, वे तुम्हें ज्ञान प्रदान करेंगे।

मैंने कहा, महाराज जी! इतनी योनियों में से निकल पाना तो बहुत कठिन है। न जाने किन-किन योनियों में भटकना पड़ेगा और कैसे-कैसे संस्कार मेरे मन में संचित हो जाएँगे। फिर तो पार हो पाना और भी मुश्किल हो जाएगा, उस समय गुरू जी कहने लगे, यदि योनियों में नहीं भटकना है तो फिर तुम समाधि लगा लो। कल्युग के अन्दर जब वे एक तीर्थ को प्रकट कर रहे होंगे तो उस समय वे तुम्हें बाहर निकाल लेंगे। अतः महाराज जी मैं बहुत ही भाग्यशाली हूँ जो कि आपके दर्शन कर रहा हूँ।

पिछली बार मैंने बताया था कि बहुत सारे प्रेमीजनों के मन में यह बात उत्पन्न हो जाती है कि उसे कल्युग की बोली के बारे में कैसे पता चल गया? क्योंकि एक हजार वर्ष के अन्तराल में बोली बदल जाया करती है और दो हजार वर्षों में तो बहुत ही कठिन हो जाती है। उसके बाद फिर कुछ भी पता नहीं चल पाता है क्योंकि उस समय तक नई बोली आ जाती है, पुरानी समाप्त हो जाती है। योगी लोगों के लिए भाषा की कोई समस्या नहीं होती है। वे दुनिया की कोई भी भाषा बोल सकते हैं। दिमाग के अन्दर एक ऐसी स्थिति होती है कि दो भाषाओं को तो हम सारे संसार के साथ शेयर करते हैं, उनमें से एक है परा वाणी और दूसरी है पसन्ती वाणी। मध्यमा और बैखरी में हम बिछुड़ जाते हैं। योगीजन जो होते हैं वे टैलीपैथी को समझते हैं और उस बोली को बोलना भी जानते हैं। अतः यह कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है।

इस प्रकार से उस योगी ने पूछा महाराज जी! मैं सौभाग्यशाली हूँ कि आपके दर्शन हो गए हैं लेकिन मुझे इस संसार की कहानी बताने की कृपा करो।

गुरू जी ने कहा, पूछो?

वह कहने लगा कि इस संसार को सारे ही महापुरुष असत्य कहते हैं वे इसकी तुलना बादल की छाया के साथ करते हैं क्योंकि सत्यता नहीं है, फिर भी महाराज जी! यह सत्य क्यों प्रतीत होता है? महाराज जी! यदि यह सच्चा है तो ज्ञानवान इसे झूठा क्यों कहते हैं? अतः ये दो प्रश्न मेरे प्रमुख हैं। तीसरा प्रश्न यह है कि यहाँ पर सर्वत्र आत्मा का ही विस्तार है -

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ ॥
आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ ॥
अंग - 846

यदि एक ही आत्मा का विस्तार है तो फिर यह नाना प्रकार के रूप क्यों दिखाई पड़ते हैं? यदि एक ही आत्मा का विस्तार है तो फिर रूप भी एक ही होना चाहिए, फिर इतने प्रकार के रूप कैसे बन गए? किसी शरीर में दुख है, किसी में सुख है। किसी में खुशियाँ हैं और किसी में गम हैं। किसी का एक प्रकार का स्वभाव है जबकि दूसरे का दूसरे प्रकार का स्वभाव है। यदि आत्मा एक ही प्रकार का है तो फिर स्वभाव भी पृथक-पृथक नहीं होने चाहिए थे? महाराज जी! मेरा चौथा प्रश्न यह है कि सभी जीव-जंगम चलते हैं जबकि आत्मा को स्थिर कहा जाता है। यदि सारा ही परमात्मा है तो फिर सारा ही स्थिर क्यों नहीं है? मेरा पाँचवां

प्रश्न यह है कि संसार का रूप धारण कर लेने के बाद फिर हमारा आत्मा निर्लिप्त कैसे है? जब विभिन्न रूप धारण कर लिए तो फिर आत्मा निर्लिप्त कैसे रह गया? मेरा छठा प्रश्न यह है कि ब्रह्म व आत्मा का साक्षात्कार कैसे हो सकता है?

उसने छः प्रश्न गुरू जी पर किए।

महाराज जी कहने लगे, योगिराज! तुमने जो यह ब्रह्म की बात कही है यह अकथनीय है। संसार के अन्दर कोई भी इसे कथन नहीं कर सकता है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि वह अगम्य व अगोचर है। हमारी इन्द्रियों की जो पहुँच है वह मैटर से आगे नहीं जा पाती है। काल मण्डल की व्याख्या बुद्धि कर सकती है, इन्द्रियाँ काल मण्डल में देख सकती हैं। कान सुन सकते हैं, जिह्वा स्वाद ले सकती है, नाक सुगन्ध ले सकता है, स्पर्श किया जा सकता है लेकिन आत्मा या ब्रह्म तो अगम्य और अगोचर है, इसलिए वह तो इन्द्रियों की पहुँच से परे है -

अलख अपार अगंम अगोचर ना तिसु कालु न करमा॥

अंग - 597

ब्रह्म इस संसार के स्पर्श से दूर है -

जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा॥
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु ॥
ना तिसु रुप वरनु नही रेखिआ साचै सबदि नीसाणु ॥ रहाउ ॥
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु कामु न नारी॥
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी ॥

अंग - 597

अतः जो ब्रह्म है, वह किसी से भी पृथक नहीं है। वह तो सबके अन्दर एक ज्योति के रूप में विद्यमान है और सबको चेतन सत्ता प्रदान कर रहा है -

घट घट अंतरि ब्रहमु लुकाइआ
घटि घटि जोति सबाई ॥
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ॥ 3 ॥
जंत उपाइ कालु सिरि जंता वसगति जुगति सबाई ॥
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई ॥
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी ॥
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी ॥

अंग - 597

अतः महाराज जी कहते हैं कि योगिराज! वह जो ब्रह्म है वह तो अकथनीय है, इसलिए उसे तो कहा ही नहीं जा सकता है। हमारा मन इन्द्रियों को जानता है लेकिन हाथ को पता ही नहीं है, मन कहाँ है। आँख व कान को पता ही नहीं है कि मन कहाँ पर है। जो हमारा सारा अन्तःकरण है, उसी को यहाँ पर मन कहा गया है। मन तो इन्द्रियों को जानता है लेकिन इन्द्रियाँ मन को नहीं जानती हैं। निःशंक रूप से मन बिल्कुल उनके पास में ही है। ठीक इसी प्रकार से व्यक्ति का मन, बुद्धि व चित्त 'ब्रह्म' को नहीं जान सकते हैं जबकि ब्रह्म इन्हें जानता है। जिस प्रकार हाथ और पैर मन को नहीं जानते हैं, उसी प्रकार से हमारे अन्दर जो चेतन बुद्धि है, सुरति है, वह ब्रह्म को नहीं जान सकती है। यही कारण है कि माया को भी निर्वचनीय कहा जाता है। ब्रह्म जानने वाली चीज नहीं है बल्कि यह तो अनुभव करने वाली चीज है। इसे अपने अन्दर जाना जा सकता है, अनुभव के द्वारा। इसे आँखों के द्वारा देखा नहीं जा सकता है, हाथों के द्वारा स्पर्श नहीं किया जा सकता है, नासिका के द्वारा सूँघा नहीं जा सकता है। बस, उसे तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

इसके अलावा तुम्हारा सवाल है कि यह संसार सच्चा है या झूठा? और यदि झूठा है तो फिर यह सच्चा प्रतीत ही क्यों होता है? यदि सच्चा है तो ज्ञानवान इसे झूठा क्यों कहते हैं?

महाराज जी कहने लगे, योगिराज! देखो! व्यक्ति को सपना प्रायः रोज ही आता है। स्वप्नकाल के अन्दर स्वप्न सच्चा ही प्रतीत होता है, कोई भी ऐसा नहीं है जिसे स्वप्नकाल में यह झूठा प्रतीत हो।

एक व्यक्ति अपने सिरहाने एक लाख रुपए रखकर सो गया। उसे सपना आ गया कि मैंने पानी पीना है। जब वह पानी लेने जाता है तो उनसे कहा जाता है कि एक पैसा दो तब पानी मिलेगा। अब उसे एक पैसा नहीं मिल रहा है जबकि उसके सिरहाने के नीचे एक लाख रुपया पड़ा हुआ है। वह एक लाख तो उसे याद ही नहीं रह गया है। अब वह अपनी वास्तविक अवस्था को तो भूल ही चुका है और सपने में गरीब हो गया है। पानी की प्यास लगी है लेकिन पानी खरीदने के लिए उसे एक पैसा नहीं मिल पा रहा है। वह पैसे माँगता घूम रहा है लेकिन कोई भी व्यक्ति उसे एक पैसा भी नहीं दे रहा है। जब वह इधर उधर भटक रहा है तो उसके पीछे कुत्ते पड़ गए, शेर पड़ गया, फिर साँप उसका पीछा करने लगा। अब वह अत्यन्त भयभीत है, आगे-आगे दौड़ा जा रहा है, लेकिन तेज दौड़ पाना भी बहुत मुश्किल हो रहा है। दौड़ता-दौड़ता नीचे गिर जाता है, उठ जाता है, आँखों को भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। अब वह भयभीत होकर काँपने लग पड़ता है। खुशी-गमी महसूस करता है, बिछोड़ा महसूस करता है और उसे यह सब कुछ सत्य ही प्रतीत होता

है। जिस समय उसे जाग आती है तो उस समय उसका दिल धक-धक कर रहा होता है और दिमाग भी बहुत परेशान होता है। फिर वह सोचता है कि वह सारा माहौल कहाँ चला गया जो कि कुछ समय पहले सत्य प्रतीत हो रहा था?

महाराज जी कहते हैं कि देखो! उस समय तो वह सब सत्य प्रतीत हो रहा था और यह सारा संसार विस्मृत था। गुरू जी उदाहरण देते हैं कि -

नरपति एकु सिंघासनि सोइआ सुपने भइआ भिखारी॥
अंग - 657

एक राजा सात मंजली अटारी पर सोया करता था। प्रत्येक मंजिल के ऊपर बाहर की तरफ एक विशिष्ट कक्ष बनाया हुआ था जिसके ऊपर फौजी शस्त्र लेकर खड़े होते थे। इसके बाद वह सातवीं मंजिल पर चढ़कर सोया करता था और जिस कक्ष में वह सोता था, वहाँ पर सारे शस्त्र तैयार-बर-तैयार रख लेता था ताकि यदि अचानक कोई अपातकालीन स्थिति आ जाए तो उसे बन्दूक व गोलियां आदि भरने में समय न लगे। कमान व धनुष ढूंढ़ना न पड़े, तलवार व बरछा आदि उठाना न पड़े। अतः वह सारे शस्त्रों को अपने साथ वाली चारपाई के ऊपर रख लेता था।

आज उस राजा को एक सपना आया कि एक अन्य राजा ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया है, उधर उसके सारे वजीर व फौजी जरनैल बिगड़ गए हैं। वे दूसरे राजा को लेकर आ गए हैं। वह कहने लगा, ऐ मेरे वजीरों तथा जरनैलो! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ दिया है, जिसकी बदौलत तुम लोगों ने मेरे साथ इतना विरोध डाल लिया है? मैंने तुम लोगों पर इतनी मेहरबानियाँ की हैं, तुम लोग मेरी बात क्यों नहीं मान रहे हो? लेकिन वे लोग उसकी कोई बात नहीं मानते हैं। फलस्वरूप वह दूसरा राजा आ जाता है। उसने इस राजा को गिरफ्तार कर लिया उसके शाही कपड़े उतार दिए और रानियों को अपने नियन्त्रण में ले लिया। जो रानियाँ पतिव्रता थीं और क्षण भर के लिए भी अपने से दूर नहीं करना चाहती थीं, वे सब उसे भद्दी गालियाँ दे रही हैं कि तुम तो बहुत बुरे व अत्यन्त निर्दयी इन्सान हो। हमारे दिल में तुम्हारे लिए तनिक सा भी प्यार नहीं है, हम लोग इस राजा के साथ जा रही हैं। वह बार-बार हैरान होता है कि ये सब तो मुझे बहुत प्यार करती थीं लेकिन इन सबको अब क्या हो गया है? उसके बाद नए राजा ने अपने मातहित सिपाहियों को हुक्म दे दिया कि इसके वस्त्र उतार कर इसे अपने राज्य से बाहर निकाल दिया जाए तथा सारे लोग इसे ईंट-रोड़े मारें और कोई भी इसका सम्मान न करे। चहुँओर इसका अपमान करते हुए इसे ले जाओ। अब यह बहुत दुखद अवस्था में जंगलों के बीच से होता हुआ जा रहा है, पैरों में छाले पड़ गए हैं, प्यास लगी हुई है। बहुत दुखी हो रहा है और सबसे पानी माँग रहा है कि मुझे एक घूँट पानी की दे दो। इसे कोई भी पानी नहीं पिलाता है। इस प्रकार वह तीन दिनों व तीन रातों तक उस जंगल में से जन-जन की धिक्कारें खाता हुआ, ईंट-रोड़ों को सहन करता हुआ तथा जख्मी हालत में जंगल में से बाहर निकल जाता है। जिस समय आगे जाता है तो वहाँ पर एक नव प्रसूता मादा गीदड़ मिल जाती है। उसने दौड़ कर इसका पीछा किया और इसकी टाँग पर काट डाला तथा बुरी तरह से इसे और भी जख्मी कर दिया। पास में काफिला जा रहा था। उस काफिले के सदस्यों ने कहा, ऐ बन्धु! तुम्हें तो नव प्रसूता गीदड़ ने काट लिया है, इसलिए तुम हलक (एक लाइलाज बीमारी) जाओगे। वह बार-बार विनतियाँ करता है कि मैं तो दो दिन पहले तक एक बादशाह था और आज मेरी यह हालत हो गई है। आप लोग मेरा उपचार करवाओ। कोई भी व्यक्ति उससे हमदर्दी नहीं करता है। आखिर एक जर्राह (शल्य चिकित्सा का माहिर हकीम) के पास वह जाता है और विनती करता है कि तुम मेरे घाव को ठीक कर दो ताकि कहीं मैं हलक न जाऊं।

वह कहने लगा, देखो। मैं मुफ्त में तुम्हारा उपचार नहीं कर सकता हूँ, इसलिए तुम पहले आवश्यक रकम लेकर आओ।

वह जगह-जगह पर जाकर पैसे माँगता है लेकिन कोई भी उसे पैसे नहीं देता है, आखिर उसे एक महात्मा मिल जाते हैं। उन्होंने उसकी सारी बात सुनी और कहने लगे, राजन्! यह सब कर्मों की बात होती है। जब तुम्हारी प्रारब्ध में राजभाग लिखा हुआ था, तब तक तुमने राजभाग किया लेकिन अब तुम्हारी प्रारब्ध क्षीण हो चुकी है, इसलिए अब तुम्हारा राजभाग समाप्त हो गया है बाकी रही तुम्हारे उपचार की बात, वह मैं तुम्हारा करता हूँ। महात्मा ने उसका आवश्यक सारा उपचार करवाया, फलस्वरूप वह कुछ दिनों में स्वस्थ हो गया। उसके बाद एक दिन वह उस जर्राह, जिसने कि पैसों के अभाव में उसका उपचार नहीं किया था, के पास से गुजर रहा था। वह कहने लगा देखो! तुमने तो मेरा उपचार नहीं किया लेकिन मैं अब स्वस्थ हो गया हूँ। तुमने तो मनुष्य होने का भी फर्ज अदा नहीं किया, मनुष्य के मन

में तो दूसरे मनुष्य के लिए दर्द होना चाहिए। तुम तो पूर्णतः बेदर्द व बेरहम व्यक्ति हो। उसे गुस्सा आ गया, फलस्वरूप उसने उठकर इसे दो चार थप्पड़ लगा दिए और उसे धक्के मारे। जब उसे धक्के मारे तो वह गिर गया और गिरते ही उसकी आँख खुल गई। अब वह अत्यन्त भयभीत मुद्रा में है। इसका स्वाभिमान इतना निम्न स्तर पर जा चुका है कि इसे कुछ भी पता नहीं लग पा रहा है कि यह सब उसके साथ क्या घटना घटित हो गई है क्योंकि वह सारे घटनाक्रम को अपने शरीर पर अनुभव कर रहा है।

इधर कमरे में प्रकाश है, सारे शस्त्र पड़े हुए हैं। जब उठकर देखा तो उसके सारे सुरक्षा रक्षक सातों मंजिलों पर पूरी मुस्तैदी से पहरा दे रहे हैं और सारे तैयार-बर-तैयार मुद्रा में हैं। यहाँ पर न तो किसी दुश्मन के आ जाने की कोई बात है और न ही रानियों द्वारा किसी प्रकार की वेवफाई की ही कोई बात है। उसका राजभाग भी पूरी तरह से कायम है। उस समय उसके मन में एक भ्रान्ति की सी अवस्था उत्पन्न हो जाती है कि यह सब मेरे साथ क्या हो गया है? अब उसे यह भी सच्चा प्रतीत हो रहा है तथा वह जो सपने में घटित हुआ था, वह भी सच्चा प्रतीत हो रहा है। महाराज जी कहते हैं -

नरपति एकु सिंघासनि सोइआ
सुपने भइआ भिखारी॥
अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ
सो गति भई हमारी ॥ *अंग - 658*

एक सपने में जब उससे राजभाग बिछुड़ गया तो उसे कितना दुख मिल गया।

महाराज जी कहने लगे, योगिराज! तुम अपने आप ही बताओ कि जिस समय उस राजे का राजभाग छिना था तो उस समय क्या उसे ऐसा लग रहा था कि वह झूठा है? उस समय उस यह सत्य ही प्रतीत हो रहा था। दूसरी तरफ यह जो जागृतावस्था है यह उस समय सत्य है, सपने के अन्दर वही सत्य है और जब हम गाढ़ी निद्रा में सो रहे होते हैं तो उस समय न फिर कोई दिन का सपना है और न कोई रात का सपना है। वहाँ पर दोनों असत्य हो जाते हैं क्योंकि उस समय जो हमारा मन है, जो हमारी चेतनता है, वह अज्ञानता में लीन हो जाती है। अतः महाराज जी कहते हैं कि जिस प्रकार से सपना इस व्यक्ति पर प्रभाव डालता है, स्वप्न काल में भय भी लगता है, प्यास भी लगती है, अन्य कार्यों को करने का भी आभास होता है तो उस समय वह सत्य होता है और इस समय यह जो अवस्था है, यह सत्य प्रतीत होती है। अतः महाराज जी ने कहा, योगिराज! यह भी सपना ही है और वह भी सपना ही है। इस प्रकार से पढ़ लो -

धारना - जगजीवन अैसा जी,
सुपने जैसा-सुपने जैसा।

जगि जीवनु अैसा सुपने जैसा
जीवनु सुपन समानं ॥
साचु करि हम गाठि दीनी छोडि परम निधानं ॥
अंग - 482

वास्तविक निधान जो था (वाहिगुरू) उसे तो हमने छोड़ दिया है और इस संसार को सत्य जानकर इसे पकड़ रखा है। महाराज जी कथन करते हैं कि भद्रपुरुष! फिर तुमने इस संसार को सपना तो माना ही नहीं है, जबकि यह भी सपना है और वह भी सपना है। एक सपना रात का है, जबकि दूसरा सपना दिन का है -

जैसा सुपना रैनि का तैसा संसार ॥ *अंग - 808*

सुपने सेती चितु मूरखि लाइआ ॥
बिसरे राज रस भोग जागत भखलाइआ ॥
आरजा गई विहाइ धंधै धाइआ ॥
पूरन भए न काम मोहिआ माइआ ॥
किआ वेचारा जंतु जा आपि भुलाइआ ॥
अंग - 707

एक बार एक कोई प्रेमीपुरुष (रूई धुनने वाला धुनिया) था। एक महात्मा उसके पास प्रत्येक वर्ष आया करते थे और प्रतिवर्ष उससे नई रजाई भरवाया करते थे और उसका बहुत सम्मान भी किया करते थे। एक रात में जब वह सोया हुआ था तो उसे सपना आ गया। राजा के चोबदार उसके पास राजा का हुक्म लेकर आ गए। वे कहने लगे ऐ धुनिया बन्धु! इस बार कुम्भ लगना है, इसलिए राजा जी ने तुम्हें रजाइयां, गदैले व विस्तरे देने हैं और पचास बैलगाड़ियां भरकर रुई आ रही है, वह सब तुमने धुन कर देनी है। साथ ही यह भी याद रखना कि यह सब तुमसे सेवा ही करवानी है, यानि कि इसका पारिश्रमिक तुम्हें नहीं मिलेगा। वह कहने लगा, मैं इतना कार्य कैसे कर सकता हूँ? मेरे अन्दर तो इतनी ताकत ही नहीं है। वे बोले यदि नहीं करोगे तो फिर हम तुम्हें जेल में डाल देंगे। अब वह बहुत अधिक भयभीत हो गया और एक ही बात कहता जा रहा है कि चाहे जेल में डाल दो, चाहे मार डालो, मुझसे पचास गाड़ियाँ रुई धुनी नहीं जाएंगी। ऐसा कहते-कहते उसे जाग आ गई, लेकिन उसके दिमाग पर यह बात असर कर गई। उसे अब वह सपना तो

प्रतीत नहीं हो रहा है, बल्कि सत्य ही प्रतीत हो रहा है। अब जब उसके पास लोग रजाइयाँ वगैरह भरवाने के लिए आते हैं तो वह एक ही बात कहता जाता है कि मैं पचास गाड़ियाँ रुई को धुन नहीं पाऊँगा। मैं यह कार्य नहीं करूंगा, मैं यह कार्य कर ही नहीं पाऊँगा। कहते-कहते बाहर को चला जाता है। लोग समझ गए कि इसके दिमाग में कोई फर्क पड़ गया है। एक साल के बाद महात्मा आए और कहने लगे कि भाई वह धुनिया कहाँ चला गया है?

वे कहने लगे कि महाराज जी! वह विचारा वैसे तो बहुत अच्छा था लेकिन न जाने उसे क्या हो गया है, बस वह एक ही बात कहता जा रहा है कि मैं पचास गाड़ियाँ रूई धुन नहीं पाऊँगा। महात्मा अन्तर्ध्यान हुए और कहने लगे, प्रेमीजनो! इसके ऊपर सपने का असर हो गया है। उस समय महात्मा उस धुनिए के पास गए और कहने लगे ऐ धुनिया बन्धु! मैं रजाई वगैरह भरवाने नहीं आया हूँ। मैं तो तुम्हें एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ। पिछले वर्ष कुम्भ का मेला था न?

वह बोला, हाँ-हाँ। राजा ने मेरे लिए भी पचास गाड़ी रुई भेजी थी, अब मैं इतनी रुई को कैसे धुन सकता हूँ?

महात्मा जी कहने लगे, मैं तुम्हें वही खुश-खबरी सुनाने लगा हूँ। वह जो रूई की गाड़ियाँ राजा ने तुम्हारी भेजीं थीं, तो जिस समय वह तुम्हारी तरफ रूई लेकर पचास गाडियाँ आ रही थीं, तो हवा के द्वारा एक गाड़ी पर आग की चिंगारी गिर पड़ी, फलस्वरूप देखते ही देखते वह रुई वाली गाड़ी जलकर राख हो गई, एक गाड़ी से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी गाड़ी को आग अपने लपेटे में लेती गई और धीरे-धीरे पचासों गाड़ियां डलकर राख में परिवर्तित हो गईं। उसके बाद राजा ने अपना ख्याल ही बदल लिया और फिर उसके अतिरिक्त रुई भी मौजूद नहीं थी।

वह धुनिया इस बात को सुनकर कहने लगा, क्या सचमुच वह रुई जल गई?

महात्मा जी बोले, शत प्रतिशत जल गई। जब उसने इतनी बात सुनी उसका दिमाग पूर्णतः स्वस्थ हो गया।

वह बोला, सन्त जी! अब आप कैसे आए हो?

महात्मा ने कहा, मैं तो तुम्हें मिलने आया हूँ।

उसने कहा, महाराज जी! मैं तो बहुत घबरा गया था कि अब ये पचास गाड़ियां रुई मुझसे ही धुनवाएँगे।

यह सब इसीलिए हुआ क्योंकि उसने अपने सपने को सत्य जान लिया, फलस्वरूप उसका दिमाग खराब हो गया था।

इस प्रकार महाराज जी कहने लगे कि सपने में सपना सच्चा लगता है तथा जागृतावस्था में जागृत अवस्था ही सच्ची लगती है। वास्तविकता यह है कि ये दोनों ही सत्य नहीं है। बस यह सब तो परमात्मा की माया ही है।

बाजीगर या जादूगर जानता है कि मेरी यह सारी माया मिथ्या है, इसीलिए उसे, उसका कोई शोक या हर्ष नहीं होता है -

इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा अैडानो ॥
संगि तिहारै कछू न चालै ताहि कहा लपटानो ॥
अंग - 1186

महाराज जी कहते हैं कि तुम सब तो सपने के साथ ही लगे हुए हो और असली तत्व को भूले बैठे हो -

तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता
सुतिआ रैणि विहाणी ॥ *अंग - 920*

सपने के अन्दर सोए हुए ही सारी आयु बीत गई है। इस प्रकार गुरू जी कहने लगे, योगिराज! जिसे तुम संसार कहते हो, वह भी सपना है और जो रात में आता है, वह भी सपना है। ये दोनों अवस्थाएँ झूठी हैं। लेकिन जिस समय व्यक्ति सपने में है तो उसे सपने की मर्यादा को स्थिर रखना चाहिए तथा जब वह जागृतावस्था में तो उसे वहाँ की मर्यादा का कायम रखना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि एक बीज से वृक्ष, फूल, फल और दोबारा बीज बन जाता है। वह बीज पहले धरती में ही था। धरती में से वह उगा, उग कर वृक्ष के रूप में विकसित हो गया। यानि कि वह बीज, वृक्ष में समा गया और शनैः शनैः वृक्ष बड़ा हो गया, उसे फूल लगे, फल लगे तथा उसमें दोबारा बीज आ गए। ठीक इसी तरह से जो परमात्मा है, उसने अपनी यह सारी क्रीड़ा बनाई हुई है। उसने एक से अनेक होकर उसमें एक तत्व डाल दिया जिसे कि हउमै तत्व कहते हैं। इस हउमै तत्व ने ही सारे संसार को भ्रम में डाला हुआ है-

धारना - जिन रच रचिआ पुरख बिधाते,
नाले हउमै पाई ।

तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता
सुतिआ रैणि विहाणी ॥ *अंग - 999*

अतः गुरू जी कहने लगे, हे योगिराज! यह तो परमात्मा

ने अपनी माया का पसारा करके स्वयं ही एक खेल बनाया हुआ है -

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा ॥
नाना रुपु धरे बहु रंगी सभ ते रहै निआरा ॥

अंग - 537

स्वयं परमात्मा ने ही अनेकों रूप धारण किए हुए हैं और फिर वह सबसे पृथक भी है। उसने एक तत्व डाल दिया है, जिसने इसकी चेतना को भुला दिया है। जिस प्रकार से सूर्य की किरण निकलती है। उस किरण पर सबसे पहले एक चक्र आ गया। वह किरण दिखाई नहीं पड़ती थी और न ही उसका प्रकाश दिखाई पड़ता था। चेतन सत्ता की जो यह किरण है, उसके ऊपर पहले आनंद का घेरा पड़ गया। इसे आनन्दमयी कोष कहते हैं। इस आनन्द के घेरे के कारण यह जगमगा उठी और इसके अन्दर रौशनी आ गई, फलस्वरूप इसने ज्योति का रूप धारण कर लिया। अब यह ब्रह्म से पृथक प्रतीत होने लग पड़ी। उसके बाद दूसरा मही तत्व इसके अन्दर पड़ गया और वह तत्व था - बुद्धि। इसे अब यह महसूस होने लग पड़ा कि मैं हूँ और मैं कोई अलग चीज हूँ। फिर इसके अन्दर ख्याल चलने शुरू हो गए जिसे कि मनोमयी कोष कहते हैं, पहले आनन्दमयी कोष होता है, फिर मनोमयी कोष तथा फिर आता है विज्ञानमयी कोष। मन के अन्दर ख्याल आने से जगत की रचना शुरू हो गई। यह हिरण्यगर्भ की अवस्था कहलाती है। यह सारा ज्ञानखण्ड की अवस्था का वर्णन है। तीसरा जिसे विज्ञानमयी कोष कहते हैं इसमें सूक्ष्म मण्डल की बात है। इसमें असंख्य शिव जी, असंख्य ब्रह्मा व असंख्य विष्णु जी लग गए।

कोटि ब्रहमे जगु साजण लाए॥ अंग - 1156

इस प्रकार से संसार की सूक्ष्म रचना होने लग पड़ी, नक्शे बन गए। इसके बाद इस पर चौथा पर्दा प्राणों का पड़ गया। अब ज्योति और भी मद्धम हो गई क्योंकि रौशनी कम हो गई। अब सुरति जब और नीचे आई तो इसके ऊपर शरीर का पर्दा पड़ गया जिसे कि अन्नमयी कोष कहते हैं। अन्नमयी कोष में आने के बाद अब ज्योति का तो पता ही नहीं चल पाता है और इसके अन्दर घना अन्धकार छा गया। महाराज जी कहते हैं कि इसके अन्दर सारा हउमै तत्व ने ही खेल रचा है जिसने कि एक चेतन वाहिगुरू या पारब्रह्म परमेश्वर को तीन रूपों में विभक्त कर दिया है। एक जीव बना दिया और एक ब्रह्म बन गया और वे एक खेल करते हैं -

बरनु चिहनु नाही किछु रचना
मिथिआ सगल पसारा ॥
भणति नानकु जब खेलु उझारै तब एकै एकंकारा ॥

अंग - 1000

वह पहले भी एक था और बाद में भी एक ही था -

जब आकरख करत हूं कबहूं
तुम महि मिलत देह धर सभहूं॥ (पा. 10)

अतः महाराज जी कहने लगे कि योगिराज! देखो! इस आत्मा के अन्दर नाना प्रकार के भेद इसलिए आ गए जैसे कि आकाश तो एक ही है लेकिन माया की व्याधि के कारण भेद प्रतीत होने लग पड़ा। अब घड़ा तो एक ही है। जो घड़े के अन्दर खाली स्थान है, उसे घटाकाश कहते हैं, कोठी के अन्दर जो जगह होती है, उसे मठाकाश कहते हैं। इसी प्रकार से बादलों के नीचे जो आकाश होता है, उसे मेघाकाश कहते हैं और जहाँ पर कोई भी आकाश न हो उसे महाकाश कहा जाता है। वास्तव में आकाश तो एक ही है लेकिन व्याधि के कारण उसकी पृथकता का पता चलता है। अतः आत्मा पर सच्चिदानन्द का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। उस कारण से इस प्रकार की सुरति उत्पन्न हो गई है -

जैसी मति देइ तैसा परगास ॥
पारब्रहमु करता अबिनास ॥ अंग - 275

उसने अनेकों शरीरों में अनेक होकर प्रतीत होना शुरू कर दिया लेकिन वास्तव में वह एक ही व्यापक है। चेतन सत्ता के कारण इसके अन्दर जो आत्मा है, वास्तव में उसी का प्रकाश है लेकिन जब वह माया के साथ मिल कर, हउमै के साथ मिलकर, नीचे की ओर आती है तो वह जीव बन जाती है, फलस्वरूप इसे हम जीवात्मा कहने लग जाते हैं। कई प्रेमीजनों ने, जो कि पढ़े-लिखे हैं, आत्मा कहना शुरू कर देते हैं। वास्तव में तो आत्मा एक ही है -

आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ ॥

अंग - 846

वह जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसके कारण छोटी सुरति पैदा हो जाती है जिसे कि जीव की सुरति कहते हैं। वह जीव की सुरति होने के कारण, जिस प्रकार का वातावरण है जिस प्रकार के उसके तत्व हैं (रजोगुण, तमोगुण व सतोगुण) उसी प्रकार का उसका स्वभाव बन जाता है और वह पृथक प्रतीत होने लग पड़ता है जबकि वास्तव में वह एक ही हुआ करता है। इस प्रकार से चेतन सत्ता होने के कारण जीव कर्म करता है, कर्म करने से देह हंगता धारण करता है कि मैं साढ़े तीन हाथ की देह हूँ। मेरा नाम वरियाम सिंह है, यह मेरा पता है, मुझे अमुक स्थान पर मिला जा सकता है आदि। अब यह कितना अधिक भूल चुका है। गुरू जी कहते हैं ऐ भद्रपुरुष! तुम इतना अधिक न भूलो -

धारना - मन तूं जोत सरुप हैं,

आपणा मूल पछाण।

मन तूं जोति सरुपु है आपणा मूलु पछाणु ॥
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु ॥

अंग - 441

बात को समझने का यत्न करो कि वह चेतन धारा थी लेकिन प्रकृति के साथ मिलते-मिलते इतना अधिक नीचे आ गई कि अपने आप को शरीर ही समझने लग पड़ी। यह पाँच तत्वों की देह अपने आपको समझने लगी जिसमें कि पच्चीस प्रकृतियों की कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। अब यह कितना बड़ा भ्रम पड़ गया है। इसने देह की हंगता धारण कर ली है। देह हंगता के कारण ही कर्म करता है और कर्म करने के कारण फिर आवागमन के चक्रव्यूह में फँस जाता है तथा एक यात्रा शुरू हो जाती है। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि अवस्था बहुत ही नीची आ गई। महाराज वहाँ न कोई जन्म है और न ही कोई मरण है -

नह किछु जनमै नह किछु मरै ॥
आपन चलितु आप ही करै ॥ *अंग - 281*

आकाश तो सर्वत्र एक रस है क्योंकि यदि घड़ा फूट जाए तो उससे आकाश को तो कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। आकाश तो पहले भी था और अब भी आकाश है यदि मकान गिर जाए तो मठाकाश को क्या हुआ? आकाश को तो कुछ भी फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि केवल मकान की ब्याधि ही दूर होती है। अतः इस प्रकार से इसका स्वरूप जो आत्मा है उसका जन्म व मरण नहीं हुआ करता है। महाराज जी कहने लगे, योगिराज! हंगता तथा ममता के कारण यह माया के रूप में उलझ गया है और विषयों में प्रवृत्त हो गया है। ज्ञानी को निजानन्द है जबकि अज्ञानी विषयों के आनन्द में रहता है। सारा संसार ही अपने स्वरूप को भूल गया है और इस देह की हंगता धारण कर ली तथा इसने यह कहना शुरू कर दिया कि मैं अमुक हूँ, मैं पढ़ा लिखा हूँ, मैं बहुत बड़ा लेक्चरार हूँ, मैं बड़ा जिमीदार हूँ, मेरे पास बहुत धन है, मैं बहुत अमीर हूँ, मैंने बहुत सारी किताबें पढ़ी हैं। इस प्रकार से उसने हंगता धारण कर ली है, जिस वजह से वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ गया। ये सारे विकार जो हैं, वह माया के कारण हैं। जो कुछ भी आपको दिखाई पड़ रहा है, जैसे कि ये पक्षी हैं, लोग हैं और सब अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं, ये सभी माया के भ्रम के कारण ही अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। जैसे कि आप किसी शीश महल में चले जाओ, उसमें आप देखोगे कि फर्श भी शीशे का बना हुआ है, छत भी शीशे की है, दीवारें भी शीशे की हैं। एक ही अनेक बन जाता है। जब ज्ञान है तो एक ही है लेकिन जब अज्ञानता है तो अनेकों रूपों में दिखाई पड़ता है। गुरू जी कहते हैं कि यह सारा माया ही है। वास्तविकता को भूलकर माया का प्रभाव पड़ता है। माया का आवरण वास्तविक स्वरूप को ढक लेता है। सारे संसार के अन्दर यह विशेष नजर आता है। इस प्रकार से जो अज्ञानी हैं, वह भ्रम में पड़ गया है। किस प्रकार से पड़ गया है? जिस प्रकार से एक रस्सी अन्धेरे में पड़ी हुई है, हमें आभास होता है कि यह तो साँप पड़ा हुआ है, उसका असर क्या होगा? हमारा जो खून का दौरा है वह तेज हो जाएगा और हम डरना शुरू कर देंगे, हालांकि यह मिथ्या है। जब सूर्योदय होता है तो हमें पता चलता है कि यह तो रस्सी है। अब वह साँप कहाँ चला गया? क्योंकि साँप तो रस्सी में समाता ही नहीं है। महाराज जी कहते हैं कि हे योगिराज! संसार तो तीनों कालों में है ही नहीं, यह तो मिथ्या चीज है। यह तो एक ही ब्रह्म, अपने आप में ही खेलता है -

एक मूरति अनेक दरसन कीन रुप अनेक॥
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक॥

जापु साहिब

चाँद की चाँदनी में सीप पड़ी हुई है लेकिन ऐसा लगता है कि चाँदी पड़ी हुई है, खाली मैदान है, लू चल रही है, प्यास लगी हुई है लेकिन आभास होता है कि पास में ही दरिया चल रहा है।

एक बार हम लोग बीकानेर की तरफ को चले गए और अनूपगढ़ से पैदल ही चल पड़े। बड़े-बड़े टिब्बे पार करने के बाद हमारा एक साथी कहने लगा कि मैं तो प्यास के कारण मरा जा रहा हूँ। पानी कितनी दूर है? वे कहने लगे कि यहाँ से दस मील पर पानी मिलेगा और पीछे चार मील रह गया है। वह कहने लगा, तुम लोग तो झूठ बोल रहे हो, वह देखो सामने पानी जा रहा है और वह देखो पानी के अन्दर तुम्हें परछाईं नहीं दिखाई पड़ रही? हम लोगों ने बताया कि यह पानी नहीं है बल्कि निगाह का धोखा है। वह बोला, नहीं, बिल्कुल नहीं, निगाह का धोखा नहीं है। हम लोगों ने कहा, ठीक है, हम तुम्हारे भ्रम को दूर कर देते हैं। अच्छा तुम लोग निशान लगा लो कि पानी कितनी दूर है? वह बोला उस वृक्ष के पास पानी है। वह वृक्ष 200 गज की दूरी पर था। हम लोग जब दो सौ गज की दूरी गए तो वह 200 गज और दूर दिखाई देने लग पड़ा। हम लोगों ने कहा कि यह तो वैसे ही

(शेष पृष्ठ 36 पर)

भाई जमाल जी को गुरू हरिगोबिन्द साहिब जी के द्वारा अनुभवी मार्ग दर्शन

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

शान ....

सतिनामु श्री वाहिगुरु,
धंन श्री गुरु नानक देव जीओ महाराज!

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ ॥
अंग - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥
अंग - 289

धारना - तुमही पिता तुमही फुनि माता,
तुमही मीतु हित भराता जी।

रसना जपती तूही तूही ॥
मात गरभ तुम ही प्रतिपालक
म्रित मंडल इक तुही ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
तुमहि पिता तुम ही फुनि माता
तुमहि मीत हित भ्राता ॥
तुम परवार तुमहि आधारा
तुमहि जीअ प्रानदाता ॥ 1 ॥
तुमहि खजीना तुमहि जरीना
तुम ही माणिक लाला ॥
तुमहि पारजात गुर ते पाए
तउ नानक भए निहाला ॥ अंग - 1215

धारना - बिन नावै गल फंधा जी,
कालु बिकालु सदा सिरि तेरै।

साधु संगत जी! उच्च स्वर में बोलो सतिनाम श्री वाहिगुरू जी। सुदूरवर्ती स्थानों से चलकर आप लोग सत्संग में शामिल होने के लिए, गुरू महाराज जी की चरण शरण में उपस्थित व सुशोभित हुए हो। गुरू महाराज जी ने फुरमान किया है कि नाम के बिना गले में पड़ा हुआ फन्दा किसी भी तरह से काटा नहीं जा सकता है।

कालु बिकालु सदा सिरि तेरै.........॥
अंग - 1126

जन्म व मरण का दुख सदा ही सिर पर चढ़ा रहता है। जब तक नाम की प्राप्ति नहीं होती है, नाम प्रकट नहीं होता है, नाम के अन्दर निवास नहीं होता है, तब तक जन्म मरण का चक्र गले में पड़ा ही रहता है। इस मनुष्य के साथ में होता क्या है? होता यह है कि यह व्यक्ति संसार में आता है और बहुत लम्बा चक्र काटकर आता है। चौरासी लाख योनियों के चक्र को काट कर आता है और यह चक्र कोई मामूली चीज नहीं है। बात करने के लिए तो यह बहुत आसान है कि हम लोग चौरासी लाख योनियों के चक्र को काट कर आए हैं। यदि हम एक-एक योनि पर ध्यान देकर देखें तो पता लगता है कि हम कितने दुखी होकर यहाँ तक पहुँचे हैं।

एक महात्मा हुए हैं जिनका नाम था - सुखदेव। बचपन से ही उनका ध्यान परमात्मा की तरफ होने के कारण छोटी उम्र के अन्दर ही उन्हें परमात्मा के प्रति वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया, फलस्वरूप वे प्रभु मिलाप के लिए घर का त्याग करके चले जाते हैं। उनका पिता उन्हें रोकता है कि बेटा! तुम्हारी उम्र अभी बहुत छोटी है और इतनी छोटी उम्र में ही तुमने घर का त्याग करने का इरादा कर लिया है? मैं तुम्हें नाम-सिमरन करने से रोकता नहीं हूँ लेकिन तुम्हारी उम्र अभी बहुत छोटी है। वह कहने लगे, पिता जी! ध्रुव तथा प्रहलाद की उम्र भी तो बहुत छोटी ही थी। दरअस्ल उम्र का सवाल नहीं हुआ करता है सवाल तो लगन का होता है। दूसरी तरफ जिनकी उम्र बहुत ज्यादा हो चुकी है, दाढ़ियाँ सफेद हो चुकी हैं, मरने के किनारे पहुँच चुके हैं लेकिन फिर भी उनका मन परमात्मा की भक्ति करने को मानता ही नहीं है। फिर बच्चा तो उनसे सयाना हुआ न, जिसे पता है कि मुझे काल का डर है।

एक कोई सेठ था। उसकी जो पुत्रवधु आई वह भजन बन्दगी वाली थी और इधर सेठ का परिवार जो था वह न तो दान करता था, न परमात्मा का भजन करता था। वह

केवल एक ही घर की ऐसी महिला थी जो कि ब्रह्ममुहुर्त में उठकर हरियश किया करती थी तथा भजन बन्दगी करती थी। एक दिन सेठ भी घर पर बैठा हुआ था। इतने में दरवाजे पर आवाज आई – 'सति करतार'। सेठ की पुत्रवधु ने आवाज सुनी कि दरवाजे पर कोई सवाली खड़ा हुआ है। उस महिला ने कोई भोजन पदार्थ घर से लिया और उसकी झोली में डाल दिया साथ ही साथ सवाल भी कर दिया बाले! अबहूँ सवेर?

उस बच्चे ने कहा, बहिन! डर काल का। उस बच्चे ने भी सवाल कर दिया कि आप के कैसी बीतती है?

उस लड़की ने जवाब दिया, 'बासी खात हैं'।

सेठ ने जब सुना कि यह उस भिक्षुक के साथ कुछ बातें करती हैं, उसे अन्य बातें तो समझ में नहीं आईं, बस एक बात समझ में आई कि हमारे घर में तो बासी भोजन ही खाते हैं। यह बात सुनकर सेठ के मन में नाराजगी आ गई। उसने अपनी पुत्रवधु को बुलाया और कहने लगा, बेटी! तुम इन भिखारियों के पास हमारी बदनामी करती हो?

वह बोली, नहीं पिता जी! मैं तो कभी भी किसी भिखारी के पास अपने घर की बदनामी नहीं करती हूँ।

वह बोला, मैंने अपने कानों के द्वारा सुना है?

अब बहस काफी बढ़ गई और उस पुत्रवधु की बात सुनने के लिए कोई भी तैयार नहीं था।

आखिर में उस लड़की के माँ-बाप को बुला लिया गया। सेठ ने कहा देखो! हमने बड़े प्यार से इसे घर में रखा हुआ है और इसे प्रत्येक प्रकार की आजादी भी दे रखी है लेकिन यह भिखारियों के पास जाकर घर से सम्बन्धित बातें करती है, वह भी छोटे-छोटे भिखारी बच्चों के साथ? आखिर कुछ सयाने लोगों ने कहा कि भाई पता तो करो कि इसने उनके साथ बातें क्या की हैं? क्योंकि वाद-विवाद का कोई आधार भी तो हो, तभी आदमी कोई बात करता भी अच्छा लगता है। जब कोई बात ही न हो तो फिर लड़ाई-झगड़ा किस बात का? पहले इस बात का पता करो कि यह कहती क्या है? बातें उनके साथ क्या करती है?

सेठ बोला, प्रेमीजनो! मैंने अपने कानों से सुना है कि यह कह रही थी हमारे तो बासी खात है।

वह महिला (सेठ की पुत्रवधु) कहने लगी, देखो! आप सभी सयाने पुरुष बैठे हो, मैंने इस प्रकार से बात नहीं कही है। जिस प्रकार से और जो बात मैंने कही है उसे आप लोग कृप्या सुनने व समझने की कृपा करें। दरअस्ल बात यह हुई है कि एक भिक्षुक बच्चा, जिसकी आयु लगभग आठ या नौ वर्ष की रही होगी, बाहर दरवाजे पर आया और उसने 'सति करतार' की आवाज दी। मैं यह सोचकर कि इस घर का कुछ भला होता रहे, थोड़ा बहुत आटा वगैरह लेकर उसे भिक्षा देने के लिए चली गई। उस बच्चे की बाल आयु देखकर मेरे मन में ख्याल आया कि बहुत सारे वृद्ध लोगों को भी जीवन मनोरथ की समझ नहीं आती है और वे घर बार के साथ प्यार डाल कर बैठे रहते हैं जबकि यह बालक बाल्यावस्था से ही परमात्मा का भजन व सिमरन करने की दिशा में लग गया है, इसे ऐसी लगन कहाँ से लगी होगी? उस समय मैंने उसके ऊपर सवाल कर दिया कि बाले! अबहूँ सवेर?

यानि कि मैंने उस बच्चे को पूछा कि ऐ बालक! अभी तो तुम्हारी आयु का प्रातःकाल ही है? अर्थात तुम्हारी आयु अभी बहुत छोटी है, यह उम्र तो खाने पीने व खेलने की होती है और तुम परमात्मा का भजन करने लग पड़े हो?

उसने मुझे उत्तर दिया, बाई! डर काल का अर्थात उसने जवाब दिया कि मृत्यु का आना अवश्यम्भावी है और वह किसी भी समय आ सकती है, इसलिए जितना जल्दी से जल्दी हो सके, नाम सिमरन में जुट जाना चाहिए जैसे कि गुरू जी फुरमान करते हैं –

नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंधु ॥
ओह बेरा नह बूझीऐ जउ आइ परै जम फंधु ॥
अंग – 254

उस बच्चे ने कहा कि मैं छोटी उम्र से ही महापुरुषों की संगत करता हूँ। मुझे पाँच वर्ष की उम्र से ही कुछ ज्ञान हो गया था, इसलिए जहाँ पर भी महापुरुषों का कई इकट्ठ होता है मैं प्रवचन सनने के लिए चला जाता हूँ। मैंने उनके मुखारन्दि से सुना था कि काल का कोई भरसा नहीं है कि वह किसे पहले झपट्टा मार दे और जहाँ तक मुझे याद है, उनका वचन इस प्रकार से था –

धारना – तेरे काल ने गुलेला मारनै,
चोगा चुगदे दे।

कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत ॥
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति॥
अंग – 631

वह बोला, माता श्री! मैं महापुरुषों का सत्संग करता हूँ। सत्संग करने का भी तरीका हुआ करता है। कुछ लोग तो कान के द्वारा सुनते हैं और उससे कुछ बातें अपनी याददाश्त में एकत्र करके उसका प्रभाव छोड़ देते हैं जबकि कुछ लोग इस प्रकार के होते हैं कि उनके ऊपर एक-एक वचन का असर होना शुरू हो जाता है तथा वे उसे मान कर

व विचार करके अपने हृदय में धारण कर लेते हैं। वह बोला कि मैंने सुना है कि –

नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंधु ॥
ओह बेरा नह बूझीऐ जउ आइ परै जम फंधु ॥
अंग – 254

अतः यमों के फन्धों से भयभीत होकर मैं इस बाल उम्र में ही वैरागी होकर परमात्मा का भजन करने लग पड़ा हूँ। वह पुत्रवधु कहने लगी कि मेरे सवाल का जवाब उसने इस प्रकार से दिया।

उसके बाद उसने मुझे पूछ लिया कि आपके कैसे बीतती है?

चूँकि वह साधुओं के पास रहता था और साधुओं के पास रहने वालों के पास रमजें ही हुआ करती हैं, वे सूत्र रूप में ही बात किया करते हैं, वे सांसारिक लोगों की भांति लम्बी बहसें नहीं किया करते हैं बल्कि वे बहुत कम करते हैं यानि कि वे सूत्र वाक्यों में ही अपनी बात कह दिया करते हैं। मैं उसकी रमज समझ गई। दरअस्ल उसने मुझे यह पूछा था कि तुम्हारे घर के अन्दर कोई दान-पुण्य का क्रम चलता है अथवा नहीं? कोई भजन-बन्दगी का कार्य होता है अथवा नहीं? मैंने उस बालक (भिक्षुक) को जवाब दिया कि नहीं यह घर तो पूर्वजन्म का बोया हुआ ही खा रहा है। अब यहाँ पर कोई भी दान-पुण्य के रूप में नया बीज नहीं बोता है। अतः मैंने उसे जवाब के तौर पर कहा कि 'बासी खात है' अर्थात ये लोग तो पूर्व जन्म का बोया हुआ ही खा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त मैंने अन्य कोई बात उससे कही नहीं है। इस बात को सारे सयाने लोग समझ गए और उन्होंने सेठ जी को समझाया कि सेठ जी! इस बहू ने तो दान-पुण्य की बात कही थी कि इस समय घर में दान-पुण्य का नया बीज नहीं बोया जा रहा है बल्कि ये लोग तो पूर्व जन्म का बोया हुआ ही खा रहे हैं। इस बातचीत में उसने कोई बुरी बात नहीं कही है। इस प्रकार से उनके घर का वाद-विवाद समाप्त हुआ।

उसके बाद सेठ कहने लगा, अच्छा बेटी! तुम्हारी बात दुरुस्त है, इसलिए अब तुम दान-पुण्य भी करती रहा करो। उस समय सेठ ने इशारा कर दिया कि तुम उस कोठे में से दाने निकाल कर दान कर दिया करो। उस लड़की ने उसी प्रकार उसमें से दाने निकालकर दान करना शुरू कर दिया। उस कोठे में क्या था? उसमें दो-तीन वर्ष पुराने चने थे, उन्हें दो-तीन साल पहले सेठ ने इसलिए खरीद कर रखा था कि जब महंगे हो जाएँगे तो फिर बेचूँगा। अब वे चने कड़ुए हो चुके थे और उनके द्वारा बनाई गई रोटियों को खा सकना भी कठिन हो गया था। उधर न तो उन रोटियों को घी लगाने की इजाजत थी और न ही साथ में कोई सब्जी वगैरह देने की ही इजाजत थी। जब कोई भिखारी आकर खाना मांगता तो वह रुखी रोटियाँ ही दे दिया करती थी।

एक दिन उस पुत्रवधु ने अपने ससुर पिता जी को थाली में, बिना चुपड़ी हुई रोटियाँ, जो कि उन कड़ुए चनों के आटे से बनाईं थी, रख कर दे दीं। जब उस सेठ ने उन रोटियों को देखा तो वह बहुत ही लोहा-लाखा हुआ। उसने अपने पुत्र व पुत्रवधु को बुलाया और कहा कि मुझे यह बतलाओ कि क्या अपने घर में कोई घाटा पड़ गया है, जो इस प्रकार की रुखी व कड़ुए आटे की रोटियाँ मुझे खाने के लिए दी हैं? तुम लोग ही इसे खाकर दिखाओ! इन्हें तो मुँह में डालना भी कठिन हो रहा है।

वह कहने लगी, पिता जी! उसूल तो यह है कि –

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ॥ अंग – 134

जिस प्रकार का बीज बोया जाता है, आगे जाकर काटने के लिए भी वही फसल मिला करती है तथा खाने के लिए भी वही सब मिलता है। यदि गेहूँ की फसल बोई है तो गेहूँ मिलेगी और यदि काँटे बोए हैं तो काँटे ही मिलेंगे। काँटों की फसल को गेहूँ के दाने नहीं लगेंगे क्योंकि नियम ही ऐसा है –

धारना – क्थिों भालदैं तूं दाख बिजौरीआँ,
क्किराँ दे बीज बीज के।

इस संसार के अन्दर तुम जिस प्रकार का भी बीज बोओगे, वही तुम्हें हजारों गुना अधिक होकर मिलेगा यदि कपड़ा बोओगे तो कपड़ा मिलना शुरू हो जाएगा, यदि अनाज बोओगे तो अनाज मिलना शुरू हो जाएगा। अन्न का दान गुरू घर में बहुत बड़ा दान माना जाता है। श्री गुरू नानक देव जी ने बार-बार यह समझाया है कि अन्न के दान का कोई मुकाबिला ही नहीं है। एक ऐसी कथा प्रचलित है कि कर्ण राजा नित्य प्रतिदिन सवा मन सोना दान किया करता था। शरीर का परित्याग करने के बाद जिस समय वह परमातत्मा की दरगाह में गया तो उसे वहाँ पर सोना ही मिलता जाए। अब सोना उसके किस काम का था वहाँ पर? यह तो बस हम लोगों ने पीली मिट्टी को इतना अधिक महत्व दे रखा है। सिक्कों के रूप में हमने इसकी कीमत आँक ली और इस पीली मिट्टी के साथ हमारा मोह पड़ गया है। वास्तव में ते यह मिट्टी ही है और अन्न का मुकाबिला यह नहीं कर सकती है। कहा जता है कि फिर उसने दोबारा जन्म लिया और उस जन्म में उसने खूब अन्न दान किया। इस प्रकर से यदि वस्त्रों का दान नहीं किया है तो दरगाह में वस्त्र की प्राप्ति नहीं हो पाएगी।

अतः वह सेठ की पुत्रवधु कहने लगी पिता जी! मैंने तो यही बात कही थी कि इस घर में तो बासी खाते हैं। इसमें मैंने कौन सी बुरी बात कह डाली है? इसमें नाराजगी की कौन सी बात है? अब जो मैंनें आपको कड़ुए चनों की रूखी रोटी खाने को दी है, वह इसलिए दी है कि ऐसी रोटी ही हजारों गुणा होकर आपको वहाँ पर प्राप्त होगी। मैंने इसलिए आपको उस प्रकार का खाना दिया है ताकि आपकी इसे खाने की आदत बन जाए अन्यथा आपको वहाँ पर फिर बहुत कठिनाई होगी क्योंकि वहाँ पर तो आपको इस प्रकार के कड़ुए चनों की रुखी रोटी ही हजारों गुना होकर प्राप्त होनी है। अब उस सेठ को वह सारी बात समझ में आ गई कि दान भी अच्छी किस्म का ही करना चाहिए क्योंकि वहाँ पर किसी भी प्रकार की ठगी नहीं चलने वाली है।

इस प्रकार से व्यक्ति जिस प्रकार का बोता है उसे उसी प्रकार का काटना पड़ता है। महाराज जी फुरमान करते हैं कि प्रेमीजनो! इस संसार के अन्दर तुम नाम का जप करने के लिए आए हो लेकिन तुम्हारा समय तो बीतता जा रहा है, इसे सम्भालो।

वह बच्चा, जिसका मैं जिक्र कर रहा था, जो पाँच वर्ष का था और घर का परित्याग करके जाने लगा, उसके पिता ने पूछा कि बालक! अभी तो तुम्हारी आयु बहुत छोटी है, वह कहने लगा, पिता जी! मुझे पिछले सौ जन्मों का ज्ञान है। दरअस्ल जब हम जन्म लेते हैं तो उसके बाद हमारे ऊपर माया पड़ जाती है, जो कि हमारे पिछली सारी याददाश्त को समाप्त कर देती है जिस प्रकार से यह वीडियो फिल्म होती है। यदि आप एक बटन दबा दो तो वह सारी समाप्त हो जाएगी और इसके ऊपर कुछ भी नहीं रह जाएगा।

इसी प्रकार से जो हमारी याददाश्त होती है, वह जिस समय हम माता के पेट में होते हैं और उल्टे लटक रहे होते हैं तो उस समय हमारी जो सुरति होती है, वह सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर केन्द्रित होती है। जिसके फलस्वरूप हमें अपने पिछले जन्मों के बारे में पूरा ज्ञान होता है। वहाँ पर यह जीव समाधिस्थ अवस्था में होता है, वृत्ति एकाग्र होती है, फलस्वरूप इसे पिछले सौ जन्मों का ज्ञान होता है। लेकिन जब यह पैदा होता है तो -

लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ ॥
अंग - 921

फिर इसके ऊपर माया अपना प्रभाव डाल देती है और इस वजह से इसका परमात्मा के साथ जुड़ा हुआ ध्यान टूट जाता है। वह कहने लगा, मेरे जन्म के समय माया को रोका हुआ था, उन दो घड़ियों में जितने भी बच्चों ने जन्म लिया था, उन सबको पिछला ज्ञान है। मैं पिछले जन्म में बहुत अधिक दुखी हुआ। पिछले जन्म में, मैं एक बर्तन बनाने वाले गरीब कुम्हार का गधा था। उसने मेरे बचपन से ही मेरे ऊपर मिट्टी लादना शुरू कर दिया। मेरी टांगें टेढ़ी हो गईं, कमर भी टेढ़ी हो गई तथा मेरी कमर में जख्म पड़ गए। जख्म पड़ने के कारण कौओं ने मेरा माँस नोचना शुरू कर दिया। उस समय मुझे खाने-पीने के लिए कुछ नहीं दिया जाता था। मेरा मालिक अपना काम करवाने के बात मुझे डंडे मार कर दूर भगा देता और मैं गोबर से सने हुए घास आदि को खाकर किसी तरह से अपना पेट भरता था। जब उसके काम के योग्य मैं न रहा तो उसने एक रुपए में मुझे एक धोबी के पास बेच दिया। अब वह धोबी मेरे ऊपर गीले कपड़े लाद कर ले जाने लगा और एक दिन मैं दलदल में फँस गया। उसने मुझे वहाँ से निकालना तो एक तरफ बल्कि मेरे ऊपर से अपने कपड़े उठाकर चलता बना क्योंकि उसके लिए मेरी कोई खास कद्र नहीं रह गई थी। वहाँ पर पास से ही छोटा से रास्ता था और दलदल होने के कारण लोगों को घूम कर जाना पड़ता था। अब मैं तो दलदल में बुरी तरह से धँस चुका था, इसलिए लोगों ने मेरे पैर रखकर निकलना शुरू कर दिया। किसी ने भी मुझे वहाँ से निकालने की कोशिश नहीं की। कोओं ने मेरे जख्मों को नोच-नोच कर मेरी पीठ उधेड़ दी और मेरे जीते-जीते ही मेरी आँखें भी खा लीं। ज्यों-ज्यों मैं तड़प कर अपने हाथ पैर हिलाता था त्यों-त्यों मैं और भी नीचे धँसता चला जा रहा था, आखिर मेरे मुँह व कानों में गारा पड़ गया, फलस्वरूप मैं इतना दुखी होकर मरा कि जब मैं उस दृश्य को देखता हूँ तो मेरा हृदय काँप जाता है। इसलिए अब मैं जरा सा भी जोखिम नहीं लेना चाहता हूँ। क्योंकि जो समय बीत गया वह तो बीत गया, लेकिन अब मैं अपने इस जन्म में परमात्मा से मिलाप करके अपने जन्म मरण के चक्र को समाप्त कर लेना चाहता हूँ और अब मुझे पूरा निश्चय हो गया है कि -

धारना - इहो तेरी वारी है गोबिंद मिलणे दी।

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥ अंग - 12

कहने लगा, पिता जी! मैंने महापुरुषों के द्वारा सुना है कि बस यही जन्म है यदि पार हो गया तो ठीक अन्यथा पुनः चौरासी के चक्र में पड़ना पड़ जाएगा क्योंकि -

इसु पउड़ी ते जो नरु चूकै सो आइ जाइ दुखु पाइदा॥
अंग - 1075

फिर तो दुख ही दुख गले में पड़ जाएगा, इसलिए मैंने इस दुख की निवृत्ति के लिए घर से जाना है और महापुरुषों

[illegible]

ਅੰਗ – 1368

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਅੰਗ – 1365

[illegible]

ਅੰਗ – 1392

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਅੰਗ – 1256

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਅੰਗ – 1126

[illegible]

ਫਿਰਤ ਫਿਰਤ ਬਹੁਤੇ ਜੁਗ ਹਾਰਿਓ ਮਾਨਸ ਦੇਹ ਲਹੀ ॥
ਨਾਨਕ ਕਹਤ ਮਿਲਨ ਕੀ ਬਰੀਆ ਸਿਮਰਤ ਕਹਾ ਨਹੀ ॥

ਅੰਗ – 631

[illegible]

आ पा रही है। गुरू जी कहते हैं कि इसका कमल उल्टा हो चुका है -

उंधउ कवलु मनमुख मति होछी मनि अंधै सिरि धंधा॥
अंग - 1126

इसकी मति खराब हो चुकी है क्योंकि यह मन के पीछे लगा हुआ है। इस अन्धे के ऊपर जन्म मरण का चक्रव्यूह रूपी धन्धा गले में पड़ गया है। यदि किसी को कहो कि भाई नाम जप लो तो यह कहता है कि समय ही नहीं है। यहाँ मेरे पास बहुत सारे प्रेमीजन आते हैं और वे बहुत दुखी व बीमार होते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि प्रेमीपुरुष! तुम पच्चीस पाठ जपुजी साहिब के कर लिया करो। वे कहते हैं नहीं जी, हम नहीं कर पाएँगे, हमारे पास तो समय ही नहीं है। फिर हम कहते हैं कि अच्छा फिर तुम रतवाड़ा साहिब में रहकर सेवा कर लो, फिर वह कहता है कि जी मैं बच्चों का क्या करूँ? मैं फिर कहता हूँ कि फिर मेरे पास क्या करने आए हो? फिर डाक्टरों के पास चले जाओ, वहाँ पर दवाइयों पर पैसे खर्चते रहो, दवाइयाँ खरीद-खरीद कर खाते रहो। तात्पर्य यह है कि यह व्यक्ति नाम जपने के लिए तो जरा सा भी तैयार नहीं है। गुरवाणी के अन्दर इतनी शक्ति है कि व्यक्ति की बीमारियाँ हट सकती हैं, रोग दूर हो सकते हैं लेकिन इसे निश्चय ही नहीं आता है। इसे यह विश्वास ही नहीं आता है कि यह गुरवाणी तो उस जंजीर को भी काट देने में समर्थ है जो कि यमदूतों की जंजीर, हमारे गले में प्रत्येक समय पड़ी रहती है।

गुरू जी कहते हैं कि यह व्यक्ति अन्धा हो चुका है और इसके ऊपर धन्धे लदे हुए हैं, धन्धों में ही यह अपना सारा जीवन बरबाद करता जा रहा है। यथा -

कालु बिकालु सदा सिरि तेरै
बिनु नावै गलि फंधा ॥ अंग - 1126

तुम्हारे सिर पर जन्म मरण का दुख पड़ा हुआ है, नाम के बिना तुम्हारे गले में फन्धा पड़ा हुआ है -

डगरी चाल नेत्र फुनि अंधुले
सबद सुरति नही भाई ॥ अंग - 1126

कहते हैं कि एक तो यह लंगड़ा कर चलता है, सीधा नहीं चलता है, लगता है कि अब गिरा, अब गिरा। टेढ़ी चाल चलता है। कई प्रेमीजनों के शरीर ही ऐसे होते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि अभी गिर जाएगा।

अपने डेरे में एक बच्चा आया हुआ है, वह पहले गिर जाता था। अब तो कुछ ठीक हो गया है। पहले वह थोड़ा सा चलता था और गिर जाता था, इसे टेढ़ी चाल कहते हैं। 'नेत्र फुनि अंधुले' क्योंकि यदि आँखों वाला हो फिर तो इसे आगे काल दिखाई पड़ जाए लेकिन इसे तो काल दिखाई ही नहीं पड़ता है, बस यह तो हमेशा यहीं पर रहना चाहता है, काल को भूलकर बैठा हुआ है, इसीलिए इसे यमदूत दिखाई ही नहीं पड़ते हैं -

.......सबद सुरति नही भाई ॥ अंग - 1126

और शब्द के साथ इसकी सुरति ही नहीं लग पा रही है -

सासत्र बेद त्रै गुण है माइआ अंधुलउ धंधु कमाई ॥
अंग - 1126

शास्त्र तथा वेद जो हैं ये तीन गुणों वाली माया के अन्दर ही बतलाते हैं कि -

खोइओ मूलु लाभु कह पावसि
दुरमति गिआन विहूणे॥ अंग - 1126

तुमने तो अपना मूल भी समाप्त कर लिया है, तुम्हें लाभ कहाँ से हो पाएगा? जो धन तुमने व्यापार आदि करने के लिए लिया था, वह तो तुमने खा-पीकर बरबाद कर दिया फिर तुम व्यापार वगैरह कैसे करोगे? चौबीस करोड़ श्वास तो तुम्हारे नित्य प्रतिदिन खाली चले जाते हैं। तुम्हारी मति तो खोटी हो चुकी है तथा तुम पूर्णतः ज्ञानहीन हो गए हो -

सबदु बीचारि राम रसु चाखिआ
नानक साचि पतीणे ॥ अंग - 1126

जिसने गुरू की वाणी को सुन लिया उसने फिर शब्द की विचार की तथा उसने नाम के रस को चख लिया, फलस्वरूप सत्य के साथ उसे प्रतीति आ गई। गुरू छठे पातशाह जी के पास एक गुरसिक्ख वचन सुना करता था, उसने गुरू जी के पास आकर नमस्कार की। उसने अपने दोनों हाथ जोड़े हुए हैं और नेत्रों से जल जा रहा है। गुरू महाराज जी कहने लगे प्रेमीपुरुष! क्या बात हुई? कहने लगा महाराज जी! मैंने आपके वचन सुने हैं, वे मेरे अन्दर घाव कर गए हैं, मेरे हृदय को वे शब्द बेध गए हैं। दरअस्ल गुरू के वचन ऐसे ही होते हैं -

कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु ॥
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥
अंग - 1374

वह कहने लगा, महाराज जी मैंने सारी विचार को हृदय में धारण किया है, कृप्या आप मेरे ऊपर कृपा करो और मेरा यह जन्म मरण का दुख दूर करने की कृपा करो। वह इस प्रकार से विनतियाँ कर रहा है -

धारना - काटहु मेरा, इक दुख रामराए।
अगनि दहै अरु गरभ बसेरा ॥

पातशाह! मेरी सुरति जाग पड़ी है और आपके जो वचन

थे, वे पूरी तरह से मेरे हृदय को वेध गए हैं और मैंने यह विचार की है कि –

जिह मुखि पाँचउ अंम्रित खाए ॥
तिह मुख देखत लूकट लाए ॥ *अंग – 329*

पातशाह! इस प्रकार से हम मुँह द्वारा दूध, दहीं, घी, खाँड, शहद आदि पाँचों अमृतों को खाते हैं और उसे फिर आग लगा कर जला डालते हैं –

इकु दुखु राम राइ काटहु मेरा ॥
अगनि दहै अरु गरभ बसेरा ॥ *अंग – 329*

मेरा यह दुख काट दो क्योंकि मैं बार-बार माँ के पेट में आता हूँ और वहाँ पर मैं आग के अन्दर बहुत दुखी होता हूँ। मैं जन्म ले लेता हूँ और फिर मर जाता हूँ, फिर जन्म ले लेता हूँ और फिर मर जाता हूँ –

काइआ बिगूती बहु बिधि भाती ॥
को जारे को गडि ले माटी ॥ *अंग – 329*

इस शरीर का मैं अभिमान करता हूँ और इसे कोई जला देता है तथा कोई धरती में गड्ढा खोदकर दबा देता है, जिसे कि कब्र कहते हैं। इसके अतिरिक्त कई लोग इसे पानी में बहा देते हैं।

कहु कबीर हरि चरण दिखावहु ॥
पाछै ते जमु किउ न पठावहु ॥ *अंग – 329*

मुझे एक बार दर्शन करवा दो, उसके बाद यदि चाहें यमदूत ही भेज देना। महाराज जी! मेरा एक दुख काट डालो क्योंकि इस दुख के कारण मैं बहुत दुखी हूँ। उस समय महाराज जी ने फुरमान किया कि ऐ प्रेमीजन! तुम गुरवाणी पढ़ते होते हो?

वह बोला, हाँ महाराज जी!

गुरू जी ने कहा, देखो! गुरवाणी पढ़ने में भी कई भेद हुआ करते हैं। एक व्यक्ति तो गुरवाणी पढ़ता है लेकिन उसका मन नहीं टिकता है। एक वह है जो गुरवाणी पढ़ता है और उसका मन टिक जाता है तथा वह गुरवाणी को समझने का यत्न करता है, एक व्यक्ति वह है जो गुरवाणी पढ़ता है और उसके अर्थ समझ लेता है। इसी तरह से एक व्यक्ति गुरवाणी पढ़ता है और उसके अर्थों को समझ कर उसे हृदय में बसा लेता है। एक व्यक्ति ऐसा होता है जो गुरवाणी को पढ़ता है और हृदय में बसाई हुई गुरवाणी को जीवन में लागू करता है। अत: गुरवाणी के पढ़ने के ये पाँच भेद हैं। इनमें से जो अन्तिम दो प्रकार हैं वे तो जीव के बन्धन को काटने में समर्थ हुआ करते हैं, पहले वाले तीन नहीं। तुम इससे भी पहले यह समझने की कोशिश करो कि मैं कौन हूँ? सारी संगत भी ध्यानमग्न होकर सुन रही है।

गुरू जी आगे कहने लगे कि देखो! यह जो शरीर है यह दो चीजों से मिलकर बना हुआ है। जिसे तुम अपना आप समझ कर बैठे हुए हो यह तो साढ़े तीन हाथ की देह मात्र है। यह तो जड़ है और पाँच तत्वों से मिलकर बनी है, इसमें पच्चीस प्रकृतियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ हैं। तत्वों का जो सतोगुणी अंश है, उसके द्वारा तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियाँ बनी हुई हैं, तमोगुणी अंश के द्वारा तुम्हारी कर्मेन्द्रियाँ बनी हुई हैं। यह एक बनावट है जो कि जड़ है। इसके अन्दर ही पाँच शक्तियाँ हैं जिन्हें प्राण कहते हैं और यह जो मन्दिर बना हुआ है, यह बहुत ही विचित्र है। इसके अन्दर 2 खरब 15 अरब सेल्स लगे हुए हैं। यह धीरे-धीरे मिट्टी में से या अन्न में से बना है। अन्न में से बनने के कारण ही यह ठोस बन गया है। इसी के साथ तुम्हारा प्रेम पड़ जाने के कारण तुम स्वयं को भूल बैठे हो कि तुम कौन हो? तुम गल्ती से इसे अपना आप, मान बैठे हो और इसका अभ्यास तुम्हारे अन्दर पक्का हो गया है। अभ्यास के पक्का हो जाने से तुम अपने आप को शरीर समझ कर इसके भोगों में मस्त हो रहे हो। ये जो तुम्हारी इन्द्रियाँ हैं, ये बहुत ही शक्तिशाली हैं। आँखें, नाक, कान, स्पर्शेन्द्रियाँ आदि सभी इस व्यक्ति को चक्कर में डाल देती हैं क्योंकि इनके द्वारा यह व्यक्ति भोग भोगता है और भोगों को भोगने के कारण इसके अन्दर अज्ञान का बादल छा जाता है। इस अज्ञानता के बादल के कारण ही यह अपने असली मनोरथ को भूल जाता है और उसके स्थान पर संसार के भोगों को भोग-भोग कर संसार से रुख्सत हो जाता है। यहाँ से तो बड़े-बड़े चले गए हैं। महाराज जी ने बड़ों-बड़ों के जाने का जिक्र इस प्रकार से किया है –

जोगी जती ब्रहमचारी बडे बडे छत्रधारी,
छत्र ही की छाइआ कई कोस लौ चलत हैं।
बडे बडे राजन कै दाबत फिरति देस,
बडे बडे भूपन के द्रप को दलतु हैं।
मान से मदीप औ दिलीप के से छत्रधारी,
बडो अभिमान भुज दंड को करत हैं।
दारा से दिलीसर द्रजोधन से मानधारी,
भोग भोग भूम अंत भूम मै मिलत हैं।
कबित (अकाल उसतति)

इन सारे बड़े-बड़े लोगों का जिक्र करके महाराज जी ने कहा कि ये सारे भोगों को भोग-भोग कर संसार से चले गए और अपने निजत्व को किसी ने भी नहीं पहचाना। यह शरीर तो जड़ है और यह शत प्रतिशत सत्य है कि इसने जाना ही है, यह तो आत्मा के कारण ही तुम्हें जीता जागता महसूस होता है। यदि इसका चेतन पक्ष इससे अलग हो जाए तो यह शरीर किसी भी काम का नहीं रह जाता है लेकिन तुम्हारा अध्यास इतना पक्का हो गया है कि तुम इसी को

अपना आप समझ बैठे हो। यदि हम इसके बारे में सारे धर्मों की विचार करें तो गीता के अन्दर जब श्री कृष्ण महाराज जी अर्जुन को समझाने लगे तो आपने कहा, अर्जुन! यहाँ पर तीन भेद हैं। यहाँ पर एक तो है - अक्षर। दूसरा है अक्खक्षर और तीसरा है पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तम, वाहिगुरू जी को कहते हैं। जो जड़ है, वह अनित्त है, वह सदैव एक रस नहीं रहता है। उसकी शक्ल निरन्तर बदलती रहती है। यह तीन गुणों रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण में है तथा आठ इसके अंग हैं। इसमें पाँच तत्व हैं मन है, बुद्धि है, अहंकार है। यह पाँच तत्वों के साथ आठ अंगों वाला है जिसे कि जड़ प्रकृति कहते हैं। इसे अपरा प्रकृति भी कहते हैं। दूसरा इसके अन्दर जो अक्षर तत्व है, वह जीव तथा ब्रह्म है, वह परा प्रकृति है। जीव, वाहिगुरू का ही अंश है लेकिन इसे जीव उपाधि इसलिए मिल गई है क्योंकि अविद्या के कारण इसे अन्धेरे ने घेर लिया है। घेरने के कारण ही यह जीव बन गया है। इसीलिए इस जीव ने परमात्मा की तरफ रुख करने की बजाए प्रकृति की तरफ रुख कर लिया है। अब इसे जो प्रकृति की इन्द्रियाँ मिली, मन मिला, बुद्धि मिली, अन्तःकरण मिला, अहंभाव मिला, उसकी अंश होने के कारण, उस तरफ को ज्यादा खींचती हैं और परमात्मा की तरफ जाने ही नहीं देती हैं। कबीर साहिब कहते हैं -

कबीर निरमल बूंद अकास की
परि गई भूमि बिकार ॥
बिनु संगति इउ माँनई होइ गई भठ छार ॥
अंग - 1375

जिस प्रकार से भट्ठी की राख हुआ करती है, उसी प्रकार की यह हो चुकी है। गुरू जी कहने लगे कि इस बात को तुम समझने का यत्न करो। दूसरी बात यह है कि परमात्मा शुद्ध ब्रह्म है। इस प्रकार से तुम्हारा जो स्वरूप है, वह वास्तव में कुछ भी नहीं बल्कि परमात्मा का ही स्वरूप है। तुम स्वयं को जीव मानते हो। सभी मत मानते हैं, सांख शास्त्र की भी यही मान्यता है। यहाँ दो चीजें थीं। एक तो यहाँ वाहिगुरू था और दूसरा उसका प्रकाश बुद्धि पर पड़ गया। बुद्धि 'मैं' तत्व को कहते हैं। इसके ऊपर प्रकाश पड़ने से यह चेतन होकर हरकत में आ गई। जब यह मन के अन्दर और अधिक नीचे उतरी तो उस समय मन के अन्दर ख्याल आने शुरू हो गए। ख्याल आने से कुछ बनना शुरू हो गया। जितनी सृष्टि है, यह सब वहाँ से पैदा हुई है। इसी प्रकार से एक बड़े महात्मा हुए हैं, जिन्हें शंकर कहते हैं। वे कहते हैं कि जो आत्म ज्योति है, यह पाँच मंजिलों में से नीचे उतरी है। पहले तो यह ज्ञानमयी कोष में गई। फिर यह विज्ञानमयी कोष में चली गई। पहले आनन्दमयी कोष में आई। एक प्रकार से यह शुद्ध थी लेकिन परमात्मा से टूट कर इसने स्वयं को अलग समझना शुरू कर दिया। इसके आगे अन्तःकरण में आ गई। बुद्धि के साथ मिलकर विज्ञानमयी कोष में आ गई। मन के ख्यालों के साथ मिलकर मनोमयी कोष में पड़ गई। इसके बाद इसके ऊपर एक और पर्दा पड़ गया जिस प्रकार से हम एक लोहे का बड़ा कड़ाहा ऊपर उल्टा रख दें, इस प्रकार से ज्योति के ऊपर प्राणों का उल्टा कड़ाहा रख दिया। इससे भी आगे उस कड़ाहे को मान लो मिट्टी से अच्छी तरह ढक दें, इस प्रकार से इसके भी आगे शरीर का पर्दा पड़ गया। पाँच पर्दे इसके ऊपर पड़े हुए हैं और इसका किसी भी प्रकार से निकल पाना नामुमकिन है। अब गुरमति कहती है कि यह शरीर तो है जड़ लेकिन इस शरीर के अन्दर वाहिगुरू जी ने अपना अंश रख दिया है। विडम्बना यह है कि यह वाहिगुरू का अंश ही, स्वयं को भूलकर, शरीर समझने लग पड़ा है। यही कारण है कि यह परमात्मा का अंश करोड़ों जन्मों से चक्कर काटता घूम रहा है। महाराज जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - इह सरीरा मेरिआ, हरि तुम मै जोत र्खी।
ताँ तूं जग महि आइआ - 2

गुरू जी कहने लगे देखो भाई जमाल! आगे बढ़ने से पहले एक बात समझनी चाहिए। पहले तो अपने आपको समझो, तब कहीं परमात्मा की समझ आएगी। जब तक तुम स्वयं को नहीं समझोगे तब तक तुम्हें परमात्मा की समझ नहीं आ पाएगी और न ही तुम्हारा यह दुख दूर हो पाएगा। जिसे तुम अपना आप कहते हो, इस शरीर के दो भाग हैं। एक भाग तो जड़ है जबकि दूसरा चेतन है -

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी
ता तू जग महि आइआ ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥
अंग - 921

इसके अन्दर परमात्मा का अंश है। वह जो परमात्मा का अंश है, वह प्रकृति के साथ मिलकर उसी के जैसा हो गया है। अब उसे शरीर से पृथक कर पाना बहुत कठिन हो गया है -

कबीर निरमल बूंद अकास की लीनी भूमि मिलाइ ॥
अनिक सिआने पचि गए ना निरवारी जाइ ॥
अंग - 1375

असंख्य सयाने लोग सोच-सोच कर दर्शन शास्त्रों को विचार-विचार कर थक गए हैं लेकिन वे इसे अलग नहीं कर सके हैं। इसका कारण यह है कि उनके पास कोई ऐसा साधन नहीं है जिसके द्वारा इसे अलग कर दिया जाए। अतः कहने लगे यह शरीर दो चीजों के सुमेल से बना है लेकिन जो इसका चेतन भाग है वह मरता नहीं है, जबकि जड़ भाग समाप्त हो जाता है। मिट्टी, मिट्टी में मिल जाती है, पानी, पानी में मिल

जाता है, आग, आग में मिल जाती है, इसलिए इस भाग को अपना आप समझ लेना तो शत प्रतिशत गलत ही है, जबकि जो दूसरा भाग है -

मरणहारु इहु जीअरा नाही ॥ *अंग - 188*

यह जन्म-जन्मान्तरों से घूमता फिर रहा है और इसके अन्दर वाहिगुरू निवास कर रहा है -

खिन महि नीच कीट कउ राज ॥
पारब्रहम गरीब निवाज ॥
जा का द्रिसटि कछू न आवै ॥
तिसु ततकाल दह दिस प्रगटावै ॥
जा कउ अपुनी करै बखसीस ॥
ता का लेखा न गनै जगदीस ॥
जीउ पिंडु सभ तिस की रासि ॥
घटि घटि पूरन ब्रहम प्रगास ॥ *अंग - 277*

प्रत्येक घट में वाहिगुरू जी का प्रकाश है। जो यह जीव तथा शरीर है, ये दोनों चीजें वाहिगुरू जी की मालकियत हैं-

अपनी बणत आपि बनाई ॥
नानक जीवै देखि बडाई ॥ *अंग - 277*

इसमें तुम अपने आप की पहचान कर लो। अतः सबसे बड़ी बात जो हमने तुम्हें बतलानी है, वह यह है कि तुम गुरवाणी की विचार करनी शुरू करो। सारा संसार पाँच तरीकों से गुरवाणी को पढ़ता है। कुछ लोगों का तो मन टिकता ही नहीं है लेकिन वे पढ़ते ही चले जाते हैं।

गुरू दसवें महाराज जी के पास सिक्ख आए और कहने लगे, महाराज जी! गुरवाणी पढ़ने में कुछ आनन्द नहीं आता है। महाराज जी कहने लगे, प्रेमीजनो! जिस तरीके से गुरवाणी पढ़नी चाहिए उसे प्रकार से पढ़ते नहीं होगे? यदि ठीक ढंग से पढ़ते होते तो फिर गुरवाणी का तो बहुत ही प्रभावशाली प्रभाव हुआ करता है। इस प्रकार से फुरमान है -

धारना - चड़ी रहे दिन रात,
नाम खुमारी-नाम खुमारी।

पोसत मध अफीम भंग,
उतर जाइ परभाति।
नाम खुमारी नानका, चड़ी रहे दिन रात।
जनम साखी

महाराज जी कहने लगे, प्रेमीजनो! गुरवाणी की तो इस प्रकार से खुमारी चढ़ती है यदि उसे सही ढंग से पढ़ा जाए। महाराज जी ने उन्हें एक दृष्टान्त के माध्यम से समझाया। आपने दो हिस्सों में उन्हें बाँटते हुए, एक हिस्से को कहा कि तुम लोग सुख निधान की दो-दो घूँटें पी लो तथा दूसरे हिस्से को कहा कि तुम लोगों ने सुख निधान को पीना नहीं है, बल्कि उसके कुल्ले ही करने हैं। जब वे कुछ समय के बाद वापिस आए तो उनसे पूछा क्यों भाई! कुछ असर हुआ? जिन्होंने दो-दो घूँटें सुख निधान की पी थीं वे तो कहने लगे महाराज जी! हमारा तो सिर घूम रहा है। महाराज जी कहने लगे कि प्रेमीजनो! इसी प्रकार से यदि गुरवाणी ठीक ढंग से पढ़ी जाए, चाहे थोड़ी सी ही पढ़ी जाए तो उसका प्रभाव पड़ता ही है, खुमारी आती ही है। फिर इस गुरवाणी का यमदूतों से छुड़वा देना कोई बड़ी बात नहीं बल्कि मामूली ही बात है। यह जीव के सारे बन्धनों को काट देती है और जीव को अपने वास्तविक स्वरूप में पहुँचा देती है लेकिन शर्त यह है कि इसे कमाना पड़ता है -

जन नानकु बोले ब्रहम बीचारु ॥
जो सुणे कमावै सु उतरै पारि ॥ *अंग - 370*

जपुजी साहिब की पहली चार पउड़ियों में सुनने की महानता है, फिर मानने की बात है और उसके बाद उसे कमाने की बात आती है। हम लोग सुन तो लेते हैं, पढ़ भी लेते हैं लेकिन जहाँ तक मानकर उसे अपनी जीवन में ढालने की बात है, वह बहुत कठिन है। लेकिन हम गुरवाणी को सुनने और मानने के बाद यदि उसे जीवन में ढाल लें तो फिर-

जनमि न मरै न आवै न जाइ ॥
हरि सेती ओहु रहै समाइ ॥ *अंग - 370*

अंम्रित बचन साध की बाणी ॥
जो जो जपै तिस की गति होवै
हरि हरि नामु नित रसन बखानी ॥ *अंग - 744*

अतः गुरवाणी को जो कमाने की बात है, वह बड़ी मुश्किल बात है।

एक बार गुरू दसवें पातशाह जी के पास एक गुरसिक्ख आता है। जिस समय संगरांद के दीवान लगते हैं, उस समय वह आता है और पहले ही चला जाता है, भोग भी नहीं पड़ने देता है। अचानक गुरू महाराज जी के ध्यान में आ गया कि यह सिक्ख पहले ही चला जाता है। एक दिन आपने कहा कि आज इसे जाने नहीं देना। फलस्वरूप उसे रोक लिया गया। गुरू जी कहने लगे, ऐ गुरसिक्ख! तुम अरदास होने से पहले ही क्यों चले जाते हो?

वह बोला, महाराज जी! मेरा गाँव बहुत दूर है और मैं गरीब आदमी हूँ, मेहनत करके दो समय का भोजन जुटाता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ तो दूसरे दिन हम भूखे रह जाते हैं, इसीलिए मैं जल्दी चला जाता हूँ। महाराज जी! मैं जल्दी-जल्दी जाकर दिहाड़ी लगाता हूँ ताकि खाने के लिए कुछ मिल जाए। उस समय महाराज जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! तुम गुरवाणी

पढ़ते हो? कहने लगा, हाँ जी। गुरू जी ने फिर पूछा, क्या तुम गुरवाणी के अर्थ भी विचारते हो? वह कहने लगा, महाराज जी! मैं गाँव में कथा भी करता हूँ और अन्य लोगों को भी गुरवाणी के अर्थ समझाता हूँ। गुरू जी ने फिर पूछा कि क्या तुम रहिरास साहिब का भी पाठ किया करते हो?

उसने कहा, हाँ महाराज जी!

गुरू जी – तुमने कभी गुरवाणी की विचार की है?

सिक्ख – महाराज जी! मैं अर्थ करता हूँ इसलिए गुरवाणी की विचार तो स्वत: ही हो जाती है। मैं तो सारे ही अर्थ जानता हूँ।

गुरू जी – तुमने गुरवाणी को अपने जीवन में ढालने की कभी कोशिश नहीं की?

सिक्ख – महाराज जी! हम कोशिश तो करते हैं कि गुरवाणी को अपने जीवन में ढाल लें।

गुरू जी! देखो, प्रेमीपुरुष! हम तुम्हारे साथ बिल्कुल सरल सी बात करते हैं कोई बहुत अधिक दर्शन की बात नहीं करते हैं, कोई गहरी बात नहीं करते हैं। वह बात यह है कि –

काहे रे मन चितवहि उदमु
जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पथर महि जंत उपाए
ता का रिजकु आगै करि धरिआ ॥ *अंग – 10*

तुम्हारे अन्दर यह बात दृढ़ नहीं हुई है? इस प्रकार से पढ़ लो –

धारना – रोजी दिंदा है पृथर दे कीड़े नूं,
तैनूं किउं ना देवे बंदिआ।

प्रेमीपुरुष! तुमने इसकी विचार की है?

सिक्ख – महाराज जी! मैं तो इसके बहुत अर्थ सुनाता हूँ। सारी संगत को इसके अर्थ खोल-खोलकर सुनाता हूँ।

गुरू जी – फिर तुम इस चीज को मानते क्यों नहीं हो?

कहने लगा, देखो, महाराज जी! व्यक्ति को परमात्मा ने बुद्धि दी है और बुद्धि इसीलिए दी है कि वह इस पर विचार करके चले। यदि मैं काम करना ही छोड़ दूँ और मेहनत मजदूरी न करूँ तो फिर तो मेरा परिवार ही भूखा मर जाएगा।

गुरू जी – फिर तो परमात्मा के ऊपर तुम्हारा विश्वास ही न हुआ?

तुमने गुरू सिद्धान्त को माना ही नहीं। अच्छा फिर हमारी चिट्ठी को ले जाओ। गुरू जी ने वह पत्र संगत के एक व्यक्ति के नाम लिख दिया। उसमें आपने यह लिख दिया कि इस व्यक्ति को छः महीने जाने नहीं देना है। इससे कथा करवाओ। वह पत्र लेकर चला जाता है, जब उस स्थान पर जाकर उसने वह पत्र दिखलाया तो सम्बन्धित व्यक्ति कहने लगे, देखो भाई! तुमने दौड़ना नहीं, भागना नहीं क्योंकि हमने तुम्हारे ऊपर पहरा लगा देना है, गुरू जी का हुक्म यह है।

वह कहने लगा, गुरू भी इस प्रकार की ठगी कर लेता है? उसने तो मेरे परिवार को मार डालने का ही पूरा प्रबन्ध कर दिया है। मैंने तो वैसे ही गुरू जी से यह बात कह डाली।

वह बहुत नाराज हुआ। वे कहने लगे देखो भाई! नाराज होओ अथवा न होओ लेकिन हम तुम्हें जाने नहीं देंगे, अन्यथा तुम अपने आप ही यहाँ पर रहो। हम यहाँ पर तुम्हारा सम्मान भी करेंगे, खाने-पीने को भी देंगे। गुरू जी ने कहा है कि तुम कथा बहुत सुन्दर सुनाते हो, इसलिए तुम यहाँ पर कथा सुनाया करो।

समय बीतता जा रहा है। उधर महाराज जी की रजा हुई कि उस सिक्ख के गाँव वालों को यह पता चला कि यह व्यक्ति गुरू की सेवा में गया हुआ है, इसलिए हम लोगों का यह फर्ज बनता है कि हम इसके परिवार को अनाज वगैरह एकत्र करके दें। अत: गाँव वालों ने अनाज वगैरह एकत्र करके दे दिया, अन्य चीजें इकट्ठी करके दे दीं। किसी घर के मुखी ने कहा कि भाई! तुम लोग दूध हमसे ले जाया करो। इस प्रकार उनकी सारी जरूरत की चीजें, गाँव वाले पूरी करने लग पड़े। एक दो महीने वे लोग अपने परिवार के मुखी की प्रतीक्षा करते रहे। बाद में लड़की अपनी माँ को कहने लगी, माँ! हम लोगों को दूसरों के दान पर नहीं पलना चाहिए बल्कि स्वयं मेहनत करनी चाहिए। अत: उन दोनों माँ-बेटी ने किसी खाते-पीते घर में जाकर माँग की कि हम लोग काम करना चाहते हैं, इसलिए हमें कोई काम देने की कृपा करो। जो भी हो सके हमें हमारा पारिश्रमिक दे दिया करो।

वहाँ पर उस घर में डेढ़-दो महीने तक एक लड़की का विवाह था। उन्होंने कहा ठीक है तुम लोग यह दाल, गेहूँ आदि की साफ-सफाई का काम करो, घर को लीपना है तथा और भी छोटे-मोटे काम तुम लोग करते रहो, जैसे कि वस्त्र आदि धोने का काम है। मैं तुम्हें पारिश्रमिक अवश्य दूँगी। पहले तुम लोग घर को लीपने की तैयारी करो। मिट्टी वगैरह ले आओ, उसे भिगो लो ताकि अच्छे से लिपाई हो सके क्योंकि उन समयों में सफेदी वगैरह का तो चलन था नहीं। उस समय वे गाँव के तालाब के किनारे पर जाकर जब मिट्टी को खोदने लगीं तो जैसे ही उस लड़की ने कुदाल को मारा तो जमीन में कुछ आवाज आई। जब धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ पर खोदना

शुरू किया तो उसमें से एक गागर निकल आई। जब उन्होंने उसका मुँह खोलकर देखा तो वह सोने की मोहरों से भरी हुई थी। वे उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुईं कि देखो 'वे' तो सेवा करने गए हुए हैं, लेकिन परमात्मा ने हमारे लिए रिजक यहीं पर पहुँचा दिया है। वे उस गागर को उठा कर उस महिला के घर ले गईं कि देखो! हमें यह गागर मिली है। वह महिला बोली, बेटी! तुम लोग तो बहुत अच्छे भाग्य वाली हो, तुम्हारे ऊपर गुरू जी ने कृपा की है, लेकिन तुम्हें यह नहीं पता है कि इसे खर्चना कैसे है? वह महिला सयानी थी, उसने उन्हें कई कुओं वाली जमीन खरीद कर दिलवा दी, साथ ही नौकर रख दिए, दो मंजिला घर बनवा दिया।

इधर उस व्यक्ति को छः महीने हो गए जिन लोगों ने उसे वहाँ पर रोका हुआ था, वे कहने लगे, देखो भाई! तुम्हारे लिए जो गुरू का हुक्म था, वह पूरा हो गया है, अब तुम जा सकते हो। वह कहने लगा, मैं अब कहाँ जाऊंगा क्योंकि मेरे पारिवारिक सदस्य तो भूखे-प्यासे मर गए होंगे।

वे कहने लगे कि तुम तो हमें रोज सुनाया करते थे कि वाहिगुरू सबको रोजी देने वाला है -

दीनन की प्रतिपाल करै नित
संत उबार गनीमन गारै॥
पृछ पसू नग नाग नराधप
सरब समै सभ को प्रतिपारै॥
पोखत है जल मै थल मै
पल मै कलि के नहीं करम बिचारै॥

त्वप्रसादि स्वये

वह तो प्रत्येक जगह पर उसका पालन-पोषण करता है, पानी में भी, धरती में भी, आकाश में भी। जो अनल पक्षी है वह पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के ऊपर उड़ता रहता है। उसे भी परमात्मा उसकी रोजी पहुँचाता है। तुम इस प्रकार से मत सोचो और अपने घर जा आओ। इस प्रकार वह बहुत ही बुझे हुए दिल से घर की तरफ चल पड़ा और मन में सोच रहा है कि न जाने मेरे बच्चों व पत्नी का क्या हाल हुआ होगा? वे तो बेचारे मर गए होंगे? क्या पता किसी ने उनका संस्कार भी किया होगा या नहीं? वह इसी प्रकार की उधेड़बुन में अपने गाँव के नजदीक पहुँच जाता है। जब वह अपने घर के पास पहुँचा तो क्या देखता है कि वहाँ पर दो मंजिला बड़ा सुन्दर मकान खड़ा है। उसने सोच लिया कि लगता है वही बात हो गई जिसका डर था। मेरे बच्चे और पत्नी तो मर गए हैं और मेरे घर पर किसी अन्य ने कब्जा कर लिया है तथा वहाँ पर दो मंजिला मकान खड़ा कर दिया है। जब पास में आता है तो उसका छोटा बेटा उसी घर में खेलता हुआ घूम रहा है। उसने पहचान लिया कि यह बेटा तो मेरा ही है। वह जल्दी-जल्दी उस बेटे के पीछे चला लेकिन वह दौड़कर सीढ़ियाँ चढ़ गया। यह भी साथ ही दौड़ कर सीढ़ियां चढ़ गया कि मैं अपने बेटे के साथ दो बातें कर लूँ। अभी वह बाहर ही था कि उसका बच्चा अन्दर जाकर कहने लगा माँ! माँ! देखो पिता जी! पुनः आ गए हैं। अब हम लोग फिर भूखे मरेंगे।

जब वह अन्दर गया तो उसने देखा कि उसकी पत्नी तो चौबारे में बैठी हुई है। उसने कहा, पतिदेव! आप गुरू जी से छुट्टी तो लेकर आए हो न? उसने कहा, क्यों? क्या हुआ?

वह कहने लगी, यह सब तो गुरू जी की ही कृपा है। फिर उसने सारी बात बतलाई।

वह बोली जाओ! तुम जाकर गुरू जी की ही सेवा करो। गुरू की सेवा में से ही हमें सब कुछ प्राप्त हुआ है। उस समय उसे यह बात समझ में आई कि गुरू जी मुझे क्या कह रहे थे -

काहे रे मन चितवहि उदमु
जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥ *अंग - 10*

संसार के अन्दर मनुष्य को पालने वाला कौन है? पक्षियों को कौन पालता है?

जिस समय बाबा फरीद जी ने पक्षियों को देखा तो वे विस्माद में आ गए और कहने लगे, देखो! यह मनुष्य कितना बड़ा गुनहगार है, परमात्मा पर भरोसा ही नहीं करता है, दूसरी तरफ ये पक्षी हैं, इनका न कोई स्टोर है, न ये कुछ जमा करते हैं, न ये हल चलाते हैं, न ये कोई अन्य कार्य करते हैं तथा दूसरी चीजें खाने वालों को उनका आहार मिल जाता है। आज का दिन खाकर ये खुश हो जाते हैं और दूसरा दिन पुनः आ जाते हैं। उनकी रोजी उन्हें पुनः मिल जाती है। कोई भी पशु-पक्षी आज तक भूख के कारण नहीं मरा है। लेकिन इस मनुष्य के अन्दर अविश्वास भरा पड़ा है। यह तो परमात्मा को मानता ही नहीं है। उस समय किसी दिवव्यानन्द में सराबोर होकर बाबा फरीद जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - कंकर चुगदे थलाँ दे वसदे,
रब दी ना आस छडदे, पंछी।

फरीदा हउ बलिहारी तिन् पंखीआ जंगलि जिंना वासु॥
ककरु चुगनि थलि वसनि रब न छोडनि पासु॥
अंग - 1383

अतः जिन महापुरुषों ने गुरवाणी की विचार करके उस पर अमल किया है, उन सबके जीवन हमें प्रेरणा देते हैं।

तिन प्रभ जब आइस मुहि दीआ।।
तब हम जनम कलू महि लीआ।।

सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

मनि चाउ भइआ प्रभ आगमु सुणिआ ॥
हरि मंगलु गाउ सखी ग्रिहु मंदरु बणिआ ॥
हरि गाउ मंगलु नित सखीए सोगु दूखु न विआपए ॥
गुर चरन लागे दिन सभागे आपणा पिरु जापए ॥
अनहत बाणी गुर सबदि जाणी
हरि नामु हरि रसु भोगो ॥
कहै नानकु प्रभु आपि मिलिआ करण कारण जोगो ॥
अंग - 922

परम सम्माननीय गुरू प्यारी साधुसंगत जी! आओ! ख्यालों को बाहर जाने से रोकें तथा चित्त वृत्तियों को एकाग्र करते हुए, अपनी जिह्वा की पवित्रता के लिए सारे ही उच्चारण करो जी - सतिनाम श्री वाहिगुरू।

आज से लगभग 350 वर्ष पहले का समय है। पौष माह की सप्तमी को सन् 1666 ई. में पटना साहिब में धन्य-धन्य श्री गुरू गोबिन्द सिंह महाराज जी प्रकट हुए। अपनी कथा को उन्होंने स्वयं ही कथन किया है -

अब मै अपनी कथा बखानो॥
तप साधत जिह बिधि मोहि आनो॥
सपत स्रिंग तिह नामु कहावा॥
पंडु राज जह जोग कमावा॥
तह हम अधिक तपसिआ साधी॥
महाकाल कालिका अराधी॥
इह बिधि करत तपसिआ भयो॥
द्वै ते इेक रुप ह्वै गयो॥

दरअस्ल जो तपस्या होती है, इसके द्वारा द्वैतभाव समाप्त होकर अद्वैतभाव में समा जाते हैं। भक्ति दो से शुरू होती है तथा एक पर समाप्त हो जाती है -

एक है अनेक है फिर एक है।

आपने ऐसे तप साधन कि जिनके द्वारा फिर -

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं ॥
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू ॥
अंग - 1375

ऐसी अवस्था प्राप्त है -

हरि हरि जन दुई एक है बिब बिचार कछु नाहि॥
जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिखै समाहि॥
बचित्र नाटक

इसी प्रकार से इस मृत्युलोक में -

तात मात मुर अलख अराधा
बहु बिधि जोग साधना साधा।
तिन जो करी अलख की सेवा
ता ताँ भए प्रसंन गुरदेवा।

क्योंकि जन्म जन्मान्तरों से यह प्रणाली चली आ रही है कि कोई भी अवतारी पुरुष ऐसी जगह पर प्रकट होता है जैसे कि श्री गुरू तेग बहादुर महाराज जी 26 साल नौ महीने व ग्यारह दिन भूमिगत कक्ष में बैठकर साधना करते रहे। इस समय के दौरान माता जी उनके दरवाजे पर बिराजमान रहते थे तथा दिन-रात सेवा में लगे रहते थे। इस प्रकार दशमेश कथन करते हैं कि मेरे माता पिता ने कितनी बड़ी योग साधना की। उनकी साधना से प्रसन्न होकर हम उनके घर में प्रकट हुए। आप जी, अपनी कथा स्वयं करते हैं। वे कहते हैं कि वैसे मेरा दिल तो यहाँ आने को नहीं कर रहा था -

चित न भयो हमरो आवन कह॥
चुभी रही सुरति प्रभ चरनन मह॥

जब हमारी सुरति जुड़ी होती है तो उस समय तो आँखें खोलने के लिए मेरा मन करता ही नहीं है। आओ! हम लोग आज उन्हीं दशमेश जी के चरणों का ध्यान धरें, जिनका प्रकाशोत्सव आज जगह-जगह पर मनाया जा रहा है। आपकी मनमोहक मूरत जैसे ही हमारी आँखों के सामने आती है तो उसी समय हमें नाम, चित्त में आ जाता है। कितनी बड़ी कृपा हमारे ऊपर होती है -

अकाल मूरति है साध संतन की
ठाहर नीकी धिआन कउ ॥ अंग - 1208

क्योंकि ध्यान ठहराने के साधन हैं। एक प्रतीक ध्यान

होता है, इसमें सामने कोई न कोई प्रतीक रखना पड़ता है -

सफल मूरति परसउ संतन की इहै धिआना धरना ॥
अंग - 531

बाबा सुखदेव सिंह जी सन् 1990 में रतवाड़ा साहिब आए। बाबा बलविन्दर सिंह जी बतलाते हैं कि ये साथ में ही थे। महापुरुषों ने इन्हें (नानकसर सम्प्रदाय वालों को) विषय दिया कि -

गुर की मूरति मन महि धिआनु ॥
गुर कै सबदि मंत्रु मनु मान ॥ अंग - 864

यानि कि वह जो शब्द है वह धुन है। वास्तव में तो हमने वहीं पर पहुँचना है लेकिन प्रतीक ध्यान में, सम्पत ध्यान में, पहुँचना होता है। इसका माध्यम है - वाहिगुरू मन्त्र। जो कि हमें हमारी मंजिल तक पहुँचाता है -

वाहिगुरु गुरमंत्र है जपु हउमै खोई। भाई गुरदास जी

इसके साथ ही 'दवै ते एक रूप हवै गयो' क्योंकि नाम तो हमारे अन्दर है, जब ध्यान साकार से प्रतीक ध्यान और प्रतीक से सम्पत ध्यान तो इस प्रकार यह बदल कर हम जिसका ध्यान करते हैं, उसी का रूप बन जाते हैं -

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं ॥
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू ॥
अंग - 1375

क्योंकि मनोनाश, वासनाक्षय और तत्व ज्ञान हो जाता है। उस समय जिसका भी ध्यान धरो उसके गुण स्वतः ही अन्दर प्रवेश कर जाते हैं -

कबीर चंदन का बिरवा भला बेड्हिओ ढाक पलास ॥
ओइ भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥
अंग - 1365

इसके आगे जो ध्यान है, उसे अंहग्रह ध्यान कहा जाता है। यह ध्यान नहीं बल्कि ब्रह्मज्ञान है। यानि कि उसका रूप ही बन जाता है।

मनि साचा मुखि साचा सोइ ॥
अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ ॥
नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ ॥ अंग - 272

क्योंकि जो हमारा ध्यान होता है, जो हम लोगों ने करना होता है, वह निराकार में शब्द का होता है और शब्द होती है - धुन।

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ
गुरमुखि अकथ कहानी ॥ अंग - 879

इस प्रकार की अकथा कथा है यह।

अगम अगाधि पारब्रहमु सोइ ॥
जो जो कहै सु मुकता होइ ॥
सुनि मीता नानकु बिनवंता ॥
साध जना की अचरज कथा ॥ अंग - 271

हरि के सेवक जो हरि भाए तिन् की कथा निरारी रे॥
आवहि न जाहि न कबहू मरते पारब्रहम संगारी रे॥
अंग - 855

राड़ा साहिब वाले महापुरुष सन्त ईशर सिंह जी वचन किया करते थे कि यदि सामने कोई निशाना ही न हो तो फिर वह लगेगा कहाँ पर? क्योंकि अन्दर तो सभी कुछ है -

गगन दमामा बाजिओ परिओ निशाने घाउ।
खेतु जु माँडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ।

अन्दर जो गगन है, उसके अन्दर धुन गूँजती है। 'धुन महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी।।' ये सूक्ष्म लहरें होती हैं, तरंगें होती हैं, जहाँ पर महापुरुष बैठते हैं, तपस्या करते हैं वहाँ पर उनका ओरा होता है -

जिथै बैसनि साध जन सो थानु सुहंदा ॥ अंग - 319

ऐसी बात नहीं है कोई इस बुतपरस्ती या मूर्ति पूजा कहने लग पड़े। वैसे बुतपरस्त तो हम सभी लोग हैं। हमारा पुत्रों के साथ, पुत्रियों के साथ, जायदादों का साथ, धन-दौलत के साथ कितना मोह है। मोह का ही बदला हुआ रूप है - प्यार।

नाम हमारे अन्दर है, हमें नाम कोई बाहर से नहीं दे सकता है। अतः यह एक अनुभव का विषय है। नानकसर सम्प्रदाय वाले महापुरुष जब भी आते तो वे इस विषय पर बहुत ही खोल कर बतलाया करते थे।

जब महापुरुष सन् 1998 ई. में सैनहोजे में बाबा सतनाम सिंह जी के घर में आए तो सनीवले में एक हाल कीर्तन कार्यक्रम के लिए लिया गया जिसमें 10,000 की संख्या में संगत एकत्र हुई। वहाँ पर श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी का दरबार सजता और सजे हुए दरबार में सभी सम्प्रदायों के लोग आते, गुजराती भी आते, सिन्धी भी आते, अन्य भी आते और सजे हुए दरबार में महापुरुष कीर्तन किया करते थे। उस समय सभी समाचार पत्रों ने लिखा कि आज कोई जोड़ने वाला आया है। वहाँ पर महापुरुषों ने युक्ति बतलाई कि

सत्संग अन्तरंग साधन किया करो -

संतसंगि अंतरि प्रभु डीठा ॥
नामु प्रभू का लागा मीठा ॥ अंग - 293

नाम हमारे अन्दर है और नाम तक पहुँचने के लिए गुरमन्त्र का अभ्यास किया जाता है। सुरति सबद का मार्ग है यह। बैखरी वाणी में बोल कर, मध्यमा, पसन्ती, परावाणी हृदय की वाणी जो होती है -

बिनु जिहवा जो जपै हिआइ ॥
कोई जाणै कैसा नाउ ॥ अंग - 1256

सातवें समागम के दौरान महापुरुषों ने यह युक्ति बतलाई थी। वहाँ पर वार्षिक समागम पर संसार प्रसिद्ध डा. स्वामी राम जी तथा अन्य साधू भी आया करते थे और वे सभी गुरमति सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया करते थे कि कौन सा सिद्धान्त गुरवाणी के प्रकाश में है। जो सुरति सबद मार्ग है, उसके विषय में श्री गुरू गोबिन्द सिंह महाराज जी कहते हैं कि हमारी भी सुरति -

चुभी रही सरुति प्रभ चरनन मह॥

यहाँ आने के लिए हमारा मन तो नहीं कर रहा था क्योंकि वहाँ पर आनन्द ही इतना था कि -

कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥ अंग - 293

हेमकुण्ट साहिब, जहाँ सात चोटियों पर निशान साहिब झूलते हैं, वहाँ पर बैठकर इतनी साधना की -

तिन प्रभ जब आइस मुहि दीआ॥
तब हम जनम कलू महि लीआ॥

लेकिन हमें अकालपुरुष जी ने आज्ञा दी। आज्ञा सुनकर हमने विनय की -

ठाढ भयो मै जोरि कर, बचन कहा सिर निआइ॥
पंथ चलै तब जगत मै जब तुम करहु सहाइ॥
कबि बाच॥दोहरा॥

उस समय हमने अपना शीश झुका दिया और फिर पटना साहिब की धरती पर प्रकट हो गए।

वहाँ पर शिवदत्त पण्डित था, उसके साथ पाँच साल कितनी बाल लीलाएँ आपने कीं। धन्य है वह नगरी क्योंकि पहले भी वहाँ पर धन्य श्री गुरू नानक देव महाराज जी के चरण पड़ते रहे। सालसराय ने परख की थी, उस 'लाल' की और उसने अपना सारा घर ही अरदास करवा दिया था। धर्मशाला बनवा दी थी। धन्य श्री गुरू तेग बहादर महाराज जी जब आसाम की यात्रा करते समय वहाँ पर पहुँचे तो मामा कृपाल दास जी की देखरेख में सारे परिवार को छोड़कर, स्वयं आगे की यात्रा पर निकल गए और वहीं पर (सतगुरू) गोबिन्द महाराज जी अवतार धारण करते हैं।

जिउ तिउ प्रभ हम को समझायो॥
इम कहिकै इह लोक पठायो॥

जिस प्रकार से अकालपुरुष ने हमें समझाया उसी प्रकार से हमने उनका वचन मान लिया और उन्होंने ही हमें आशीर्वाद देकर यहाँ पर भेज दिया -

मै अपना सुत तोहि निवाजा॥
पंथ प्रचुर करबे कउ साजा॥

कि मैं यहाँ पर पन्थ का प्रचार करूँ। भीखनशाह घड़ाम पटियाले से पटना साहिब की तरफ चलता है क्योंकि उसे उस दिशा में रौशनी दिखाई पड़ गई थी। महापुरुषों को इस प्रकार के अनुभव हो जाने स्वभाविक बातें ही हुआ करती हैं। ईसा जी को भी अनुभव हुआ था कि इस प्रकार का साबूत सूरत वाला, जिसके सिर पर दस्तार है, हाथ में बाज है, सिर पर ताज सजाया हुआ है, शस्त्रधारी है तथा घोड़े पर चढ़कर घूमने वाला, इस संसार के उद्धार हेतु आएगा। उन्होंने अपनी डायरी में से सारी चीजें लिखी हैं। जब उनसे पूछा गया कि वह कब आएगा? तो आप बताते हैं कि समय स्वयं ही बतला देगा। क्योंकि -

होनि नजीकि खुदाइ दै भेतु न किसै देनि ॥
अंग - 1384

इधर भीखनशाह पहले तो पश्चिम की तरफ सिजदा किया करता था, नमाज पढ़ा करता था, लेकिन आज उन्होंने सिजदा पूरब की तरफ किया है। जब आप पटना साहिब बाला प्रियतम जी के पास पहुँच कर दर्शन कर लेते हैं तो उस समय उन्होंने अपने दो थाल, उनके पलंग के पास बैठकर, उनकी यह परख करने के लिए कि ये हिन्दुओं के मददगार होंगे या मुसलमानों के, उनके आगे कर दिए। उधर दशमेश जी ने अपने दोनों बाल हाथ उन दोनों पर रख दिए। यह साधुओं की रहस्यात्मक बातें हुआ करती हैं। पीर जी अपने सवाल का उत्तर जानकर खूब प्रसन्न हुए। पीर जी के मुरीदों ने पीर जी को पूछा कि यह कौन से रहस्य की बात थी? पीर जी ने अपने मुरीदों को बताया कि मैंने अपने मन में यह सवाल किया था कि ये हिन्दुओं के पीर होंगे या मुसलमानों के? लेकिन महांपुरुष तो सारी कायनात के सांझे

हुआ करते हैं। संसार के लोगों को चार किस्मों में बाँटा जाता है। ये चार प्रकार हैं - मैटल टाइप, वेजीटेबल टाइप, एनीमल टाइप तथा मून टाइप। मून टाइप वह होता है कि जिस प्रकार से चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा शान्ति प्रदान करता है। वह ब्रह्मांडीय खोज हुआ करती है। महापुरुष इसी प्रकार के होते हैं क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में प्रेम को ही अपनाया होता है। गुरू जी ने भी हमें यह सिद्धान्त प्रदान किया है कि -

जत्र तत्र दिसा विसा हुइ फैलिओ अनुराग॥

जापु साहिब

उन्हें तो प्रत्येक दिशा में प्यार ही दिखाई पड़ता है।

महापुरुषों को हिन्दू समाज ने भी बहुत सम्मान दिया। डा. स्वामी राम जी ने महापुरुषों के कर कमलों द्वारा देहरादून मैडिकल कालेज का शिलान्यास करवाया। आजकल वह मैडिकल यूनिवर्सिटी बन गई है। यह जो सम्प्रदाय है, यह धन्य गुरू गोबिन्द सिंह महाराज जी से चला है। गुरू महाराज जी ने भाई साहिब भाई दया सिंह जी पर कृपा की जिन्होंने प्यार सहित अपना शीश भेंट किया। शनैः शनैः यह सम्प्रदाय राड़ा साहिब और रतवाड़ा साहिब तक पहुँच गया। महापुरुषों का काम होता है स्वयं खण्डे-बाटे का अमृत ग्रहण करना तथा अन्य लोगों को ग्रहण करवाना, नाम जपना तथा अन्य लोगों को जपाना -

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु ॥
रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ॥

अंग - 1373

दशमेश जी कहते हैं कि इस प्रकार से, हम, इस लोक में आए यानि कि जोर व जुल्म की जड़ उखाड़ने के लिए -

धरम चलावन संत उबारन॥
दुसट सभन को मूल उपारन॥

आपने सन्तजनों को ऊपर उठाना था तथा दुष्टजनों की जड़ें उखाड़नी थीं। अब बाला प्रियतम जी बचपन से ही शस्त्र धारण करते हैं, गुलेल के द्वारा घड़ों को तोड़ देते हैं। इसके बाद माता जी ने महिलाओं को घड़ों के स्थान पर गागरें उपलब्ध करवा दीं लेकिन फिर आप तीर के द्वारा उनमें सुराख कर दिया करते थे। एक प्रकार से जो समाज के अन्दर पापों के घड़े भरे हुए थे, बाबा प्रियतम जी उन्हें समाप्त कर रहे थे। आप बाल लीलाओं के द्वारा समाज कल्याण का कार्य कर रहे थे। माता जी आपके उलाहनों से तंग आकर उस कुएँ को ही कह देते हैं कि 'तुम खारा हो जाओ', जिस कुएँ में से वहाँ की महिलाएँ पानी भरने आया करती थीं। जहाँ पर आजकल श्री हरिमन्दिर साहिब (पटना साहिब) जी दर्शन प्रदान कर रहे हैं, वहाँ पर वह कुआँ आज भी मौजूद है। इसके अतिरिक्त असंख्य बाल-लीलाएँ दशमेश जी ने कीं। क्योंकि-

जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।

पण्डित शिवदत्त जी, अपने इष्ट की अराधना में प्यारपूर्वक गंगा तट की बरेती पर बैठा करते थे, ध्यानमग्न होकर साधनाएँ किया करते थे क्योंकि आप षटकर्म किया करते थे।

पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता ॥
हउ हउ करत बंधन महि परिआ
नह मिलीऐ इह जुगता ॥ *अंग - 642*

जब तक सामने गुरू का प्रत्यक्ष स्वरूप ही न हो तब तक मिलाप असम्भव है। क्योंकि -

गुर गोविंदु गुोविंदु गुरु है नानक भेदु न भाई ॥

अंग - 442

वह उपासना के दौरान कभी रामचन्द्र जी का और कभी श्री कृष्ण जी का ध्यान धरता है। बाबा प्रियतम जी के साथ प्रायः बच्चों की सेना हुआ करती थी। उन्होंने देखा कि पण्डित ध्यान में बैठा है, सामने श्री रामचन्द्र जी की फोटो रखी हुई है। वह उन्हें नमस्कार करता है। उसे प्रत्यक्ष रूप में रामचन्द्र जी के दर्शन हो गए। दूसरी बार देखता है तो सामने बाला प्रियतम जी दिखाई पड़ते हैं। जब वह श्री कृष्ण जी का ध्यान धरता है तो उसे श्री कृष्ण जी के दर्शन हो जाते हैं, नमस्कार करता है, जब शीश ऊपर उठाता है तो सामने बाला प्रियतम जी खड़े हैं। जब ध्यान परिपक्व हो जाता है तो उस प्यारे के दर्शन हो जाते हैं। उन आँखों को शिव नेत्र भी कहा है तथा दिव्य नेत्र भी कहा है -

नानक से अखड़ीआँ बिअंनि
जिनी डिसंदो मा पिरी ॥ *अंग - 577*

अब आपने ऐसे दिव्य नेत्र प्रदान कर दिए कि जिसके द्वारा सारा आस पास का वातावरण ही सुगन्धित हो जाता है। इधर राजा फतहचन्द तथा रानी मैणी पुत्र की लालसा में उपासनारत हैं। वे बहुत अधिक उपाय करते हैं, यज्ञ करते हैं, षटकर्म करते हैं। पण्डित शिवदत्त उन्हें भी प्रेम भक्ति के मार्ग पर प्रेरित करता है कि तुम लोग इस वासना का त्याग कर दो और तुम लोग विशुद्ध प्यार के मार्ग पर आ जाओ। पण्डित जी के मुख के द्वारा उस दम्पत्ति ने बाला प्रियतम जी की बाल लीलाओं के बारे में सुना लेकिन रानी मैणी के अन्दर पुत्र की लालसा काफी प्रबल है। जब वह बच्चों को

खेलते हुए देखती है तो उसके अन्दर यह वासना है कि बाला प्रियतम जैसा बालक उसके माध्यम से जन्म ले ले तथा उसे मातृत्व सुख प्रदान करे। एक दिन वह ध्यान में बैठी हुई है और ध्यान के अन्दर असीम शक्ति हुआ करती है -

उडे उडि आवै सै कोसा
तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै
मन महि सिमरनु करिआ ॥ *अंग - 10*

ठंडक के समय साइबेरिया से कूँजें पंजाब की तरफ आ जाती हैं। उनके बच्चे यहाँ से बहुत दूर होते हैं लेकिन वे सिमरन के द्वारा ही उनका पालन-पोषण करती हैं, इसी प्रकार से कच्छू पानी में रहता है, वह अण्डे बाहर देता है, वह ध्यान शक्ति के द्वारा अण्डों में से बच्चे निकाल लेता है और उन्हें पानी की तरफ, ध्यान शक्ति के द्वारा खींच लेता है। यदि ध्यान शत प्रतिशत केन्द्रित हो तो वह वांछित चीज को प्रकट कर लेती है।

अतः रानी लालसा करती है कि बाला प्रियतम जी जैसा पुत्र उसकी कोख से पैदा हो। उधर भाई नन्द लाल जी फुरमान करते हैं कि -

तेरे जिहा होर ना कोई इस जग उते आइआ।
अकाल मूरत दी जाहरा मूरत,
गुरु गोबिंद अखवाइआ।

रानी मैणी ध्यान में मग्न बैठी है और बाला प्रियतम जी उनकी गोद में जाकर बैठ जाते हैं। आप कहते हैं माता! नेत्र खोलो! मैं आ गया। वह क्या देखती है कि मेरी गोद तो भरी हुई है। मेरी गोद में तो बाला प्रियतम जी बैठे हुए हैं। बस उस बाला प्रियतम जी के, अपनी गोद में दर्शन करके, उसकी सारी वासनाएँ शान्त हो गईं। मनोनाश, वासनाक्षय और तत्व ज्ञान हो गया।

जब रात हो जाती है तो माता गुजरी जी को फिक्र होने लगती है कि लाल जी, आज न जाने कहाँ लीलाएँ रचा रहे हैं। मामा कृपाल दास जी को आप भेजते हैं और वे उन्हें घर लेकर आते हैं। माता जी उन्हें पूछते हैं कि आपने इतनी देर कहाँ लगा दी? वे कहते हैं कि आज मुझे एक और माँ मिल गई थी। वे कहती हैं कि माँ तो एक ही होती है लेकिन बाला प्रियतम जी तो लीलाएँ करते हैं।

सामने चन्द्रमा की रौशनी है। आप कई बर्तनों में पानी रखवा लेते हैं। आप कहते हैं सारे बर्तनों में चन्द्रमा को देखो। जब ऊपर देखते हैं तो सारे बर्तनों में एक-एक चन्द्रमा तथा उनका अपना स्वरूप दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से महापुरुष सबके सांझे हुआ करते हैं। बाकी असली बात होती है भावना की और भावना को ही फल लगा करता है।

वह भी समय आ गया, जब देह अध्यास को तोड़कर आत्मदर्शी बनना होता है, शब्द में ध्यान को लगाना होता है। शब्द जो है, वह धुन है और अन्दर धुन गूँजती है -

अनहत बाणी थानु निराला ॥
ता की धुनि मोहे गोपाला ॥ *अंग - 186*

ये दोनों राजा व रानी अब प्यार में ही जीवन व्यतीत करते हैं लेकिन जब श्री आनन्दपुर साहिब से श्री गुरू तेग बहादर जी का पत्र आता है कि अब आप लोग वापिस आ जाओ। उस समय जो, बड़े-बड़े हकीम, खान, पठान आदि श्रद्धालु बन गए थे, वे सभी उदास हो जाते हैं कि अब बाला प्रियतम जी चले जाएँगे। उधर पण्डित शिवदत्त का वैराग्य भी देखते ही बनता है क्योंकि प्यारे के बिछोड़े को सहन कर पाना अत्यन्त कठिन है -

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ ॥
ध्रिगु जीवणु संसारि ता कै पाछै जीवणा ॥ *अंग - 83*

पण्डित जी को बाला प्रियतम जी सांत्वना देते हैं कि पण्डित जी! चौदह वर्षों बाद तुम्हारा मिलाप हो जाएगा। हम तुम्हारे अंग-संग ही रहेंगे। जब तुम ध्यान में बैठा करोगे तो तुम्हें दर्शन हो जाया करेंगे।

रानी मैणी जी को जब पता चलता है कि बाला प्रियतम जी तो मुझे माता कहकर बुलाते हैं लेकिन अब वे चले जाएँगे तो मुझे माता कहकर कौन बुलाएगा? वह यह सोचकर अपनी होश ही खो बैठती हैं। बाला प्रियतम जी उनके ऊपर पानी के छींटे मारकर उन्हें होश में लाते हैं तथा कहते हैं देखो! माता जी! जब तुम मेरे साथियों को घुंघणियाँ खिलाया करोगी तो तुम्हें दर्शन स्वतः ही हो जाया करेंगे। आपने रानी मैणी को अपने हाथों से गुरवाणी का गुटका दिया, पोशाक दी, कटार दी तथा अन्य निशानियाँ दीं, जो कि आज भी उस स्थान पर मौजूद हैं। इस प्रकार से प्यार वालों के लिए बिछोड़े को सहन कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है -

लागी होइ सु जानै पीर ॥
राम भगति अनीआले तीर ॥ *अंग - 327*

आपने वचन किए कि आप सभी लोग सत्संग करते रहना और सत्संग में हम स्वयं मौजूद हुआ करेंगे। आपने चौदह

(शेष पृष्ठ 36 पर)

नूरानी मिलाप - 11

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

(श्री गुरू नानक देव जी महाराज जी के 550 वर्षीय प्रकाश शताब्दी को समर्पित)

मै मूरख की केतक बात है कोटि पराधी तरिआ रे॥
गुरु नानकु जिन सुणिआ पेखिआ से फिरि गरभासि न परिआ रे ॥ (अंग - 627)

भगता तै सैसारीआ जोड़ु कदे न आइआ ॥

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 41)

जगत की कठोरता तथा अज्ञानता

भले ही सम्माननीय बाबा मेहता कल्याण दास जी की जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या थी फिर भी जीवन के काफी लम्बे समय तक उनके ऊपर भी माया ने अपना प्रभाव बनाकर ही रखा जिस कारण से (श्री गुरू) नानक देव जी के ऊपर उनकी पुत्र भावना ही बरकरार रही। प्यार की मूर्ति राए बुलार जैसों के द्वारा समझाने पर भी वे कठिन से ही समझते थे। जीवन के अन्तिम पलों में ही परमात्मा ने उनके ऊपर से माया का पर्दा दूर किया, फलस्वरूप (श्री गुरू) नानक देव जी के प्रति पुत्र भावना से ऊपर उठकर परमात्मा जैसी श्रद्धा व समझ उन्हें प्राप्त हुई। यहाँ यह भी बताना तर्कसंगत होगा कि बेबे नानकी जी को यह समझ बचपन से ही प्राप्त थी।

पिता जी को समय रहते या समय से पहले दिखाई नहीं पड़ता है और जब उन्हें दिखाई पड़ता है तब तक समय बीत चुका होता है। सच्चे सौदे वाली वार्ता, सात दिनों के भूखे साधुओं को भोजन करवाना, कोई अलौकिक घटना नहीं थी बल्कि दुनिया के अस्तित्व तक के लिए एक नई शुरूआत थी। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या आज कोई बच्चा ऐसा है जो इस मार्ग पर चलता है? प्राय: सभी बच्चे अपने कुल की रीति के अनुसार चलते हैं यानि कि वे अपने पिता व पूर्वजों के मार्ग पर चलते हुए, धन कमाते हुए, गृहस्थ धारण करते हुए, प्रत्येक प्रकार से धनोपार्जन करते हुए, पिता की भांति धन व माल को एकत्र करते हुए इस संसार से कूच कर जाते हैं। फिर भी सवाल वही कायम है कि क्या कोई बच्चा ऐसा है जो श्री गुरू नानक देव जी की भांति या उनके द्वारा बतलाए गए मार्ग पर चलते हुए खरा सौदा करता हो?

काचा धनु संचहि मूरख गावार ॥
मनमुख भूले अंध गावार ॥ अंग - 665

साचा धनु गुरमती पाए ॥
काचा धनु फुनि आवै जाए ॥ अंग - 665

कितने लोगों को समझ है कि कच्चा धन व सच्चा धन क्या है? दरअस्ल कच्चे धन को, भले ही वह स्थूल रूप में हो अथवा सूक्ष्म रूप में हो, अधिकांशत: अपनाया है। पिता व पूर्वजों की कुल व रीति पर चलने वाले तो लगभग सभी हैं लेकिन वे तो विरले ही हैं जो कि महापुरुषों व गुरुओं के द्वारा चलाए गए प्रमुख मार्ग पर चलते हैं। वैसे भी परमात्मा के प्यारों तथा सांसारिक सोच वालों का कोई मेल ही नहीं होता है। पावन गुरवाणी के अनुसार 'भगता तै सैसारीआ जोड़ु कदे न आइआ।।' भले ही यह सृष्टि की रचना, परमात्मा ने अपने प्यारों के लिए की थी लेकिन कुछ और ही घटित हो गया -

कबीर धरती साध की तसकर बैसहि गाहि ॥
अंग - 965

चोरों, लुटेरों, पाखण्डियों, वहम प्रस्तों, धोखेबाजों आदि ने इस पृथ्वी पर कब्जा कर लिया है। इन सबके प्रभाव से समाज ने समस्याओं के एक जंगल का रूप धारण कर लिया है -

बहु परपंच करि पर धनु लिआवै ॥
सुत दारा पहि आनि लुटावै ॥ 1 ॥
मन मेरे भूले कपटु न कीजै ॥
अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै ॥ अंग - 656

सांसारिक लूट-खसूट के द्वारा एकत्र किया हुआ धन

देखने में तो भले ही सुखदाई प्रतीत होता है लेकिन इसका परिणाम दुखमय ही निकलता है। उपर्युक्त विचार का तात्पर्य इस प्रसंग में इतना ही है कि क्या कोई सत्यवादी पुत्र है जो कि श्री गुरू नानक देव जी की तरह से कार्य करने की इच्छा रखता हो? इसका जवाब इतना ही है कि कोई विरला ही है। यथा 'कोई हरिउ बूट रहिउ री।।' दूसरों के दुखों का अपने ऊपर लेना, उनके दुखों की निवृत्ति करनी, दूसरों के दुखों को दूर करने के लिए हर सम्भव प्रयास करना, उनके जख्मों पर मरहम लगाना आदि सब कुछ परोपकारी रूहों के हिस्से ही आता है। यदि हम ही दूसरों के जख्मों पर मरहम लगाएँ तो हमें भी शान्ति की प्राप्ति होगी और परमात्मा हमारे ऊपर भी प्रसन्न होगा।

इस प्रकार की सोच वाले लोगों को आम लोग प्राय: टेढ़ी नजर से ही देखते हैं और उनका सम्मान ईर्ष्या और जुल्म से ही किया जाता है, उनका मजाक उड़ाने का प्रयास किया जाता है और यही इस कठोर जगत का स्वभाव है।

इसी कठोर संसार के द्वारा प्यार और ईश्वरीय नूर को बीस रुपए के बदले में झापड़ों समेत गुस्से का शिकार होना पड़ा। कवि सन्तोष सिंह जी लिखते हैं -

सोहति पर गए नील कपोला
जिउ उपल पर अलिन अछोला

(श्री गुरू) नानक देव जी की गालों पर काले रंग के नील इस प्रकार से पड़ गए कि मानो कमल के फूल पर भ्रमर बैठा हो, तात्पर्य यह है कि संसार के 20 रुपए भी परमात्मा के प्यार और नूर की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हो गए। लेकिन जिस बहिन नानकी को इस बात की कद्र थी, समझ थी, उसने दौड़कर पिता जी को ऐसा करने से रोका और सम्भाला ताकि उपद्रव और अधिक न बढ़ जाए।

समय की रौ का बदलना प्रत्येक के हिस्से में नहीं आया है। जब बहिन नानकी ने पिता जी को अपने भाई पर क्रोधित होने से रोका तो फिर दूर व नजदीक खड़े लोग भी पास में आ गए, फलस्वरूप बेबे नानकी जी ने अपने पिता को छोड़कर अपने भाई नानक जी को अपने आलिंगन में ले लिया और उसे बहुत प्यार किया। इस नूरानी मिलाप में, प्यार भरे आलिंगन में अपने भाई को लेते ही, बेबे नानकी जी के रोम-रोम में से उस परमात्मा की तरंग दौड़ने लग पड़ी और उन्हें एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होने लग पड़ी।

अभी तक बेबे नानकी जी को यह अहसास था कि पिता जी ने नानक जी को अभी चपत नहीं लगाई है क्योंकि उन्होंने पिता जी के द्वारा चपत लगाने के लिए उठाए गए हाथ को पकड़ लिया था लेकिन जब बेबे जी ने अपने परमात्मा के नूर स्वरूप भैया जी के चेहरे की तरफ देखा तो फिर उस दुख को सहन न करते हुए बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। उनकी सहयोगी महिला ने उन्हें सम्भाला। अब अपने आपको तथा भैया नानक जी को सम्भालते हुए आप अपने घर की तरफ चल पड़े। उधर कुछ लोग मेहता कल्याणदास जी को समझाने लगे और उन्हें दूसरी तरफ ले गए। इधर घर में सम्माननीय माता तृप्ता जी चिन्तित थे इसीलिए वे बेचैनी की हालत में घर से चले आ रहे थे। शान्ति की मूर्ति के शान्त आँसू सूख चुके थे। अचानक गालों पर पड़े हुए निशानों को देखकर, माँ की चीखें निकल गईं। उन्होंने अपने पुत्र को अपने आलिंगन में ले लिया, प्यार किया और उसके सिर पर खूब हाथ फेरा लेकिन गालों पर पड़े हुए निशान माता जी को असीम पीड़ा दे रहे थे। बहिन नानकी भी इस घटना से बहुत ही दुखी थी, दासियाँ भी बहुत ही खामोश वाली मुद्रा में थीं। आस पास के लोगों के चेहरे पर इस घटना का अत्यन्त सहम दिखाई पड़ रहा है। सारा वातावरण अपने आप को धिक्कारें दे रहा है और उसमें से सूक्ष्म आवाजें आ रही हैं कि इतना बड़ा उपद्रव? केवल बीस रुपयों के बदले में सृष्टि के मालिक के साथ इस प्रकार का व्यवहार? अत: इस प्रकार के वातावरण से सारी कुदरत शर्मशार हो रही है। कुदरत हँस रही है, कादर के सहारे। कुदरत का ध्येय जीवन है, कादर। लेकिन यदि कादर का ही निरादर होगा तो फिर कुदरत का अस्तित्व ही रह पाना असम्भव है। अत: सारी कायनात ही शर्मशार हो रही है लेकिन अब तो समय बीत चुका था। सारे जीव-जन्तु व सारी कायनात बेवश हो कर अपने आपको दुखी महसूस कर रही है। सारी प्रकृति मानो सिर झुकाए खड़ी थी। अब इसी कुदरत ने माँ को शक्ति प्रदान की फलस्वरूप कादर की कुदरत माँ के माध्यम से बोली, मेरे लाल जी! आप अब तनिक सी भी चिन्ता मत करो और चुप करके घर बैठे रहो। तुम्हें कोई भी आज के बाद काम के लिए नहीं कहेगा और तुम अपनी मर्जी के साथ काम करो, हँसो-खेलो, खुश रहो और सुखी बसो। कुदरत भी सारे दुखान्त पर पाश्चाताप करती है। हे परमात्मा के नूर! जो हुआ सो हुआ, गुस्ताखी के लिए मुझे माफ करो लेकिन मैं भी बहुत मजबूर हूँ। पिता का रिश्ता है ही इस प्रकार का और बड़ों का सम्मान करना कादर का ही हुक्म है। पिता की सख्ती का मुकाबिला नहीं करना है बल्कि इसे कादर का हुक्म जानकर सह लेना है। इस सख्ती की समझ भले ही बाद में कायनात को आ ही जाए लेकिन उस समय तक तो समय बीत चुका होता है। परमात्मा के प्यारों के प्रति संसार का व्यवहार ही इस प्रकार का होता है।

कुदरत का रूप माता जी ने (गुरू) नानक जी को असीम प्यार किया लेकिन उस परमात्मा के नूर की गालें

अभी तक भी नीली हैं, उनके अन्दर संसार के दुख को दूर करने की पीड़ा है। आपके नेत्र अभी तक भी संसार को सुखी करने के लिए सजल हैं।

परमात्मा के प्यारे सदैव अपने ऊपर दुखों को झेलकर, संसार को सुख पहुँचाते रहे हैं तथा पहुँचाते रहेंगे। संसार उनकी कद्र करे या न करे, उनकी सोच में जरा सा भी अन्तर नहीं आ पाता है। यही संगत और पंगत (एक समान बैठकर सत्संग करना तथा एक समान बैठकर लंगर या भोजन ग्रहण करना) का सिद्धान्त सतगुरू नानक देव महाराज जी ने प्रदान किया। सारे संसार के अन्दर आज भी इस सिद्धान्त की रूपमानता गुरू के लंगर के रूप में हो रही है। लेकिन दूसरी तरफ इस सबके बावजूद भी संसार के अन्दर सुख-शान्ति, पारस्परिक भाईचारा आदि में बेहिसाब पृथकताएँ मौजूद हैं। दरअस्ल यही संसार की कठोरता और अज्ञानता है। यदि जन साधारण को गुरू जी द्वारा दर्शाए गए उपर्युक्त सिद्धान्त की समझ आ जाए तो सारा संसार क्षण भर में ही सुखमय, आनन्दमय व बे-गमपुरा बन जाएगा।

(पृष्ठ 17 का शेष)

है, पानी नहीं है। जाओ, तुम देख आओ हम यहाँ पर पेड़ के नीचे बैठते हैं। वह चला गया, उसने जाकर देखा कि वहाँ पर पानी नहीं है। उसे प्यास बहुत तेज लगी हुई थी। वह कहने लगा, पानी तो है लेकिन दिखाई नहीं पड़ता है। हम लोगों ने कहा कि यह सब तुम्हारा भ्रम पड़ रहा है।

इस प्रकार से यह मिथ्या चीज है, वास्तविकता नहीं है लेकिन दिखाई पड़ता है। इसे अज्ञान कहते हैं। यह अज्ञान, ब्रह्म के सहारे हुआ करता है, जिस प्रकार से मकान के सहारे अन्धेरा होता है, दीवारें हो गईं और दीवारों के अन्दर अन्धेरा हो गया। इस प्रकार से जो अज्ञान है उसकी जो जड़ है, वह संसार का प्रपंच है। अविद्या के कारण, भ्रम के कारण, ऐसा प्रतीत होता है।

एक ही आत्मा है और वह परमात्मा की अंश है तथा वह अनादि है। यह बनती नहीं है, अपितु यह अपने आप से ही है। यह सर्वव्यापक है, यह आती-जाती नहीं है और आकाश की भांति परिपूर्ण है तथा सच्चिदानन्द है। पूरा गुरू जब हउमै के अन्धकार को दूर कर देता है तो उस समय वास्तविकता सामने आ जाती है। इसीलिए गुरू महाराज जी ने ऐसा फुरमान किया है कि जब तक आदमी के मन में अन्धेरा है, तब तक संसार की कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो कि उसके अन्दर प्रकाश कर सकती है। यथा -

धारना - बिनाँ गुराँ तों ना मिटदा हनेरा,
चंद भावें सौ चड़ जाए।

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ॥
एते चानण होदिआँ गुर बिनु घोर अंधार ॥
नानक गुरु न चेतनी मनि आपणै सुचेत ॥
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ॥
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह ॥
फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह ॥3॥
अंग - 463

'चलता'

(पृष्ठ 33 का शेष)

वर्ष का समय भी बतला दिया। जब चौदह वर्ष बीत गए तो सारी संगत वहाँ से श्री आन्दपुर साहिब के लिए प्रस्थान करती है। उस समय पण्डित शिवदत्त जी अत्यन्त वृद्धावस्था में हैं, उन्हें पालकी में बैठाया जाता है और धीरे-धीरे सारी संगत श्री आनन्दपुर साहिब पहुँच जाती है। जब सारी संगत कीरतपुर साहिब पहुँचती है तो श्री दशमेश जी अपने चौदह वर्ष के पुराने प्यार को बरकार रखते हुए स्वयं श्री आनन्दपुर साहिब से चलकर कीरतपुर साहिब आते हैं और संगत का हार्दिक स्वागत करते हैं। पटना साहिब की सारी संगत वैराग्य में है कि चौदह वर्ष बाद भी ये हमें भूले नहीं हैं और स्वयं लेने के लिए आए हैं। पण्डित जी की भी वृद्धावस्था थी, उसकी अन्तिम इच्छा भी यही थी कि मेरा जो अन्तिम श्वास हो वह गुरु-चरणों में ही निकले। उधर दशमेश जी पटना साहिब की सारी संगत का टिकाना बहुत ही सुन्दर स्थान पर करवाते हैं।

आज पण्डित शिवदत्त जी का वह समय भी आ गया जो कि हम सभी पर आना निश्चित है। लेकिन यदि वह समय गुरु-चरणों में ही आए तो कितना सुन्दर होता है।

धन्य गुरू गोबिन्द सिंह महाराज जी पण्डित शिवदत्त के शीश को अपनी गोद में रखते हैं और आखिरी श्वास पर आप वही दोहराते हैं जो कि नाम सिमरन की युक्ति बतलाई जाती है। श्वास अन्दर को जाए तो 'वाहि ...' और बाहर की ओर आए तो 'गुरु ...' कहो। पण्डित शिवदत्त ने लम्बा श्वास लिया, सामने गुरू का दीदार है और अन्तिम श्वास पर जब गहरा श्वास लिया तो वहाँ पर आया गुरु ... फलस्वरूप वह गुरुलोक को चला गया -

लोक सुखीए परलोक सुहेले।
नानक हर प्रभ आपे मेले।

वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतहि।

वारां भाई गुरदास
स्टीक

डा. भाई वीर सिंह जी

14. पउड़ी (नाग-शेषनाग, पतंजलि)

सेखनाग पातंजल मथिआ गुरमुखि सासत्र नागि सुणाई।
वेद अथरबण बोलिआ जोग बिना नहि भरमु चुकाई।
जिउ करि मैली आरसी सिकल बिना नहि मुखि दिखाई।
जोगु पदारथ निरमला अनहद धुनि अंदरि लिवलाई।
असटदसा सिधि नउ निधी गुरमुखि जोगी चरन लगाई।
त्रिहु जुगा की बासना कलिजुग विचि पातंजलि पाई।
हथो हथी पाईऐ भगति जोग की पूर कमाई।
नाम दान इसनानु सुभाई।

नागों में से गुरुमुख शिरोमणि नाम है। उस नाम ने वेदों को मथकर व पतंजलि ऋषि का अवतार धारण करके अपने राम वाला पतंजलि शास्त्र सुनाया। उसने वेद अथर्ववेद के वाक्य बोले कि योग के बिना मन का भ्रम दूर नहीं हो पाता है (तात्पर्य यह है कि योग या प्राणायाम श्रेष्ठ है)। जिस प्रकार से आरसी में निकिल किए बिना मुँह दिखाई नहीं पड़ता है, उसी प्रकार से योग के बिना मन शुद्ध नहीं हो पाता है। योग के द्वारा ही दसवें द्वार में वृत्ति लग जाती है और जिसके फलस्वरूप अठारह सिद्धियाँ व नौ निधियाँ गुरुमुख के पैरों में स्वतः ही आ जाती हैं। तीनों युगों की सारी वासनाएँ कल्युग में पतंजलि ने प्राप्त कर लीं है, जिसका परिणाम यह है कि जो पतंजलि शास्त्र के अनुसार योग करता है, वह प्राप्त कर ही लेता है। लेकिन भाई साहिब भाई गुरदास जी अपने मत को सातवीं तुक में छः शास्त्रों की समाप्ति के बाद में बतलाते हैं कि भक्ति योग सर्वाधिक लाभप्रद है और इसका लाभ भी शीघ्रतिशीघ्र प्राप्त हो जाता है। भक्ति योग का प्रत्यक्ष रूप है नाम दान व स्नान लेकिन शर्त यह है कि इसे निष्काम होकर किया जाए।

अब पंद्रहवीं पउड़ी में आप यह बतलाते हैं कि जो समय बीत जाता है, वह दोबारा हाथ में नहीं आ पाता है। प्रत्येक युग का जीव कर्म तो करता ही है लेकिन व वासनाओं को दूर नहीं कर पाता है और वह वासनाएँ प्रत्येक युग में जन्म-मरण का चक्र शुरू ही रखती हैं, कल्युग में भी वे वासनाओं के अधीन होने के वजह से ही जन्म लेते हैं, कर्म करते हैं और मर जाते हैं लेकिन आवागमन का चक्र समाप्त नहीं हो पाता है।

16. (युगों से सम्बन्धित प्रचलित ख्याल)

जुगि जुगि मेरु सरीर का बासना बधा आवै जावै।
फिरि फिरि फेरि वटाईऐ गिआनी होइ मरमु कउ पावै।
सतिजुगि दूजा भरमु करि त्रेते विच जोनी फिरि आवै।
त्रेते करमा बाधते दुआपरि फिरि अवतार करावै।
दुआपरि ममता अहंकार हउमै अंदरि गरबि गलावै।

त्रिहु जुगाँ के करम करि जनम मरन संसा न चुकावै।
फिरि कलिजुग अंदरि देहि धरि करमाँ अंदरि फेर फसावै।
अउसरु चुका हथ न आवै।

(मेरे सरीर का - शरीर का शिरोमणि अर्थात जीवात्मा, मरमु - भेद)

प्रत्येक युग में शरीर का मेरु अर्थात जीवात्मा वासनाओं के कारण चौरासी लाख योनियों में भटकता है। बार-बार इसे अलग प्रकार का शरीर मिलता है, इस बात को कोई विरला ज्ञानी ही समझ पाता है। सत्युग में द्वैत भाव के भ्रम के कारण ही इसे त्रेता युग में जन्म मिलता है, फिर त्रेतायुग में कर्मबन्धन के कारण उसे द्वापर युग में आना पड़ता है और द्वापर युग में 'मैं' व 'मेरी' के बन्धन के कारण यानि कि ममता व अहंकार के बन्धन के कारण इसका जन्म-मरण का चक्र समाप्त नहीं हो पाता है अर्थात कल्युग के अन्दर देह धारण करके भी यह स्वयं को कर्म बन्धन में ही फँसा कर रखता है और बीत गया समय दोबारा हाथ में नहीं आ पाता है।

भावार्थ! जीवों का कर्मों के बन्धन में बँधकर भटकना और युगों के बदलने के साथ भी दूसरे युगों में जन्म लेते रहना और मरते रहना यानि कि कर्मबन्धनों ने आवागमन के चक्र को न टूटने देना, ऐसा मत कर्म की प्रधानता वाली विचारधारा वाले लोगों का है यानि कि वासनाओं का नाश नहीं हो पाता है।

16. कल्युग तथा नाम

कलिजुग की सुण साधना करमकिरत की चलै न काई।
बिना भजन भगवान के भाउ बगति बिन ठौर न थाई।
लहे कमाणा एत जुगि पिछली जुगीं करी कमाई।
पाइआ मानस देहि कउ औथो चुकिआ ठौर न ठाई।
कलिजुग के उपकार सुणि जैसे बेद अथरबण गाई।
भाउ भगति परवाण है जग होम ते पुरब कमाई।
करिके नीच सदावणा ता प्रभु लेखे अंदरि पाई।
कलिजुगि नावै की वडिआई।

कल्युग की साधना के बारे में सुनो कि कर्म और किरत की राई जितनी भी कोई बात नहीं चल सकती है। भगवान के भजन के बिना तथा प्रेमाभक्ति के बिना न तो यहाँ पर जगह मिल पाएगी और न ही आगे मिल पाएगी, पिछले युगों में जो कमाई की है उसका फल यहाँ पर उतर जाता है अर्थात कल्युग में छुटकारे का अवसर है। तुमने मनुष्य जन्म को प्राप्त किया है लेकिन यदि इस जन्म में हाथ से अवसर छूट गया तो फिर लोक व परलोक दोनों में ही जगह नहीं मिल पाएगी। कल्युग के उपकार सुनो, जैसा कि अथर्ववेद गवाही देता है। अब भाई गुरदास जी अपना नोट देते हैं कि प्रेमा भक्ति ही स्वीकार्य है जबकि यज्ञ व होम पिछले युगों की बातें हैं। यदि कर्म करते हुए भी स्वयं को अहंभाव रहित रखे तो फिर प्रभु जी उसे लेखे में अवश्य ही लगाता है। अतः कल्युग में केवल एक नाम की ही महत्ता है।

भावार्थ - 'भाउ भगति करि नीच सदाए। तउ नानक मोखंतर पाए।' के अनुसार कल्युग में कर्मकाण्ड की राई जितनी भी बात नहीं चल पाती है। यह सब पिछले युगों का कर्म था जबकि अब तो सारे कर्म अधूरे ही रह जाते हैं, 'बीउ बीज पति लै गऐ अब किउ उगवै दालि।।' भाई साहिब जी का सिद्धान्त यही है कि प्रेमा भक्ति व नाम का आश्रय मत छोड़ों क्योंकि बारात तो दूल्हे के साथ ही शोभा देती है यानि कि सारे साधन नाम के साथ ही शोभा देते हैं, 'करम करत होवै निहकरम।। तिसु वैसनो का निरमल धरम।।' अगली छः पउड़ियों में श्री गुरू नानक देव जी के अवतार का वर्णन करते हैं।

भाई नन्द लाल जी
गजलें

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 46)

कदम आँ बिर कि उ राहि खुदा पैमूदा मी बाशद।
जबाने बिह कि दर जिकरि खुदा आसूदा मी बाशद।

कदम वह ही अच्छा है जो कि भगवान के मार्ग पर उठाया जाए, जिह्वा तो वह ही भली है जो कि परमात्मा के सिमरन में सुखानुभूति करे।

बहर सूइ कि मी-बीनम ब चशमम मासवा नाइद
हमेशा नकशि उ द दीदाइ मा बूदा मी बाशद।

मैं जिधर भी देखता हूँ, मेरी आँखों में कुछ समाता ही नहीं है, हमेशा उसके नक्शे ही हमारी आँखों में समाए रहते हैं।

ज-फैजि मुरशदि कामिल मरा माअलूम शुद आखिर
कि दाइम मरदुमि दुनिआ गम-आलूदा मीबाशद।

पूरे गुरू जी की कृपा से आखिर मुझे यह ज्ञान हो गया कि संसार के लोग सदैव ही गम तथा चिन्ता में फँसे रहते हैं।

जहे साहिबदिलि रौशन जमीरि आरिफ कामिल
किह बर दरगाहि ह्क पेशानीइ उ सूदा मे बाशद।

कितना भाग्यशाली है उस दिल का मालिक, जिसकी आत्मा रौशन है तथा जो पूरा ज्ञानवान है तथा जिसका माथा परमात्मा की दरगाह पर झुक जाता है।

ब-कुरबानी सरि कूइ बिगरद व दम मजन गोया
इशारतहाइ चशमि उ मरा फरमूदा मी बाशद।

कुर्बानी के लिए उसकी गली में ऐ गोया, घूमते रहो और फुकरी न मारो, मुझे तो उसकी आँखों के इशारे का हुक्म मिलना चाहिए।

27.

हजार तखति मुरसा फतादा दर रहि अंदर
कलंदरानि तू ताजो नगीं नमी खाहंद।

हजारों तख्त, जो कि हीरे, जवाहरातों से सुसज्जित हैं, तुम्हारे मार्ग में पड़े हुए हैं लेकिन तुम्हारे दीवानों को इन ताजों व नगीनों की कोई जरूरत ही नहीं होती है।

फनाह पजीर बवद हर चि हसत दर आलम
नहि आशकाँ कि अज असरारि इशक अगाह अंद।

संसार के अन्दर प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाने वाली है लेकिन आशिक जो हैं, वे समाप्त हो जाने वाले नहीं हैं क्योंकि वे इश्क के रहस्यों से वाकिफ हैं।

तमाम चशम तवाँ शुद पैइ नजराइ उ
हजार सीना बि सौदाए हिजर मीकाहंद।

समस्त आँखें उसके दर्शनों के लिए लालायित हैं और हजारों चित्त उसकी विरह-व्यथा से पीड़ित हैं।

तमाम दौलति दुनिआ ब-यूक निगाह बखशंद।
यकीं बिदाँ कि गदायानि उ शहिनशाह अंदर।

यह यकीन रखो कि उसके द्वार के भिखारी भी पातशाहों के पातशाह हैं क्योंकि जो सारी दुनिया की दौलत है उसे वे एक दृष्टि के द्वारा ही प्रदान कर देते हैं।

हमेशा सुहबति मरदानि ह्क तलब गोया
कि तालिबानि खुदा वासलानि अ्लाह अंद।

ऐ गोया! हमेशा परमात्मा के प्यारों की संगत की तलाश करो क्योंकि उसके प्यारे, उसके साथ जुड़े हुए हैं।

28.

गर दसति मन हमेशा पैइ कार मीरवद
मन चूं कुनम कि दिल बसूइ यार मी रवद।

भले ही मेरे हाथ सदैव काम में ही व्यस्त रहते हैं लेकिन मैं क्या करूँ? क्योंकि मेरा दिल तो हमेशा अपने यार की तरफ ही दौड़ता रहता है।

आवाजि लनतरानी हर दम बोगशि दिल
मूसा मगर बदीदनि दीदार मी-रवद।

भले ही यह आवाज प्रत्येक समय कानों में गूँजती रहती है कि तुम उसे देख नहीं सकते हो लेकिन मूसा फिर भी दीदार करने के लिए जा रहा है।

ईं दीदा नीसत आँ कि अजो अशक मी-चकद
जामि मुह्बत असत कि सरशार मी रवद।

जिस आँख में से आँसू गिरें, यह आँख ऐसी है ही नहीं क्योंकि प्रेम प्याला तो किनारों तक भरा ही रहता है।

दिलदार वा दिल जि बसकि यके अंद दर वजूद
जाँ दिल हमेशा जानबि दिलदार मीरवद।

दिलदार तथा दिल आपस में इतने ओत-प्रोत हैं कि दिल सदैव दिलदार की तरफ ही दौड़ता रहता है।

दर दर दो कौन गरदनि उ सर-बुलंद शुद
मनसूर वार हर कि सूइ दार मीरवद।

दोनों संसारों में उसकी गर्दन फख्र के साथ ऊँची हो जाती है, जो भी मनसूर की भांति सूली की तरफ दौड़ता है।

गोरा जि यादि दूसत हकीकी ह्यात याफत
दीगर चिरा बकूचाइ खुमार मी रवद।

गोया ने सज्जन की याद में वास्तविक जीवन प्राप्त कर लिया है, इसलिए अब वह मयखाने की गली में क्यों जाए?

29.

कीसत इमरुज कि सौदाइ निगारे दारद
बादशाहेसत दरीं दहिर कि यारे दारद।

कौन है जिस पर आज उस प्रियतम का इश्क सवार है? इस दुनिया में वह बादशाह है जिसका कोई यार है।

दानम अै शोख कि खूनि दो जहाँ खाहद रेखत
चशमि मसत तू इमरुज खुमारे दारद।

मैं जानता हूँ कि ऐ शोख माशूक! आज यह दोनों जहानों का खून करेगा क्योंकि आज तेरी मस्त आँख नशे में चूर है।

दामनि चशमि मरा खूनि जिगर रंगीं करद
दिलि दीवानाइ मा तुरण बहारे दारद।

जिगर के खून ने मेरी आँख के पल्ले को लाल कर दिया है, फलस्वरूप हमारे दीवाने दिल में एक आन्नदातिरेक की बहार आ गई है।

सायाइ तूबा ओ फिरदौस नखाहद हरगिज
हर कि मनसूर सिफत सायाइ दारे दारद।

जिसे मनसूर की भांति सूली की छाया प्राप्त है उसे न तो स्वर्ग के वृक्ष तूबा की जरूरत है और न ही स्वर्ग की -

रुइ गुलगूनि खुद अै शमआ बर अफरुज दमे
दिलि परवाना ओ बुलबुल ब-तू कारे दारद।

ऐ दीपक! अपने लाल फूलों जैसे मुख को कुछ समय के लिए रौशन करो क्योंकि परवाने और बुलबुल के दिल को तुम्हारे साथ कुछ काम है।

ब-हर दीवाना अगर सिलसला-हा मीसाजंदि
दिलि गोया ब खमि जुलफ करारे दारद।

भले ही प्रत्येक दीवाने के लिए जंजीरें बनाई जाती हैं लेकिन गोया का दिल तो जुल्फों की जंजीर से ही रुक जाता है।

30.

कसे बहालि गरीबानि बे-नवा न-रसद
रसीदाएम बजाइ कि बादशा ना रसद।

कोई भी गरीब-परदेशी के हाल की सुनवाई नहीं करता है, वैसे हम तो वहाँ पहुँच चुके हैं, जहाँ पर कि बादशाह भी पहुँच नहीं सकता है।

हजार खुलदि बरीं रा ब-नीम जौ न-खरंद
अजाँ कि हीच बदाँ कूइ दिलरुबा न रसद।

हजारों ऊँचे स्वर्गों को वे एकाध जौ के बदले भी नहीं खरीदते हैं क्योंकि इनमें से कोई भी स्वर्ग उस प्रियतम की गली तक नहीं पहुँचता है।

तबीबि इशक चुनीं गुफता असत मी-गोयंद।
बहालि दरदि गरीबाँ बजुज खुदा न रसद।

कहते हैं कि प्रेम के वैद्य ने कुछ ऐसा कहा है कि परदेसियों के दर्दनाक हाल की बात को सिवाए परमात्मा के कोई भी नहीं सुनता है।

बराइ रौशनीइ चशमि दिल अगर खाही।
बखाकि दरगाहि उ हीच तुतीआ न रसद।

यदि तुम अपने दिल की आँख की रौशनी को चाहते हो तो देखो उसकी दरगाह की धूल तक कोई भी शूरवीर नहीं पहुँच सकता है।

बयादि दूसत तवाँ उमर रा बसर बुरदन
कि दर बराबरि-आँ हीच कीमीआ न रसद।

मित्र की याद में सारी उम्र को काटा जा सकता है क्योंकि उसके मुकाबिले में कोई भी रसायन नहीं है।

तमाम दौलति गीती फिदाइ खाकि दरश
किह ताँ फिदा-श न गरदद कसे बजा न रसद।

सारे संसार की दौलत को उसके द्वार धूल पर से न्यौछावर कर दूँ क्योंकि जब तक उस पर कुर्बान नहीं हुआ जाता है, तब तक उसके पास तक पहुँचा नहीं जा सकता है।

फिदाइ खाकि दरश मी शवद अजाँ गोया
कि हरकि खाक न गरदद ब मुदआ न रसद।

गोया उसके दरवाजे की धूल पर से बलिहार जाता है क्योंकि जब तक कोई खाक नहीं बनता है, तब तक वह अपने मनोरथ को प्राप्त नहीं कर सकता है।

31.

मुशति खाकि दरगहि उ कीमीआ गर मी कुनद
हर गदा रा बादिशाहि हफत-किशवर मी कुनद।

(शेष पृष्ठ 55 पर)

भले अमरदास गुण तेरे तेरी उपमा तोहि बनि आवै।।

(श्री गुरू अमरदास महाराज जी के प्रकाश पर्व के सम्बन्ध में)

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

सिक्ख धर्म के तीसरे गुरू नानक धन्य गुरू अमरदास जी हैं।

जोति एहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ ॥'
अंग - 966

वे एक ही निरंकारी ज्योति हैं। स्वयं परमात्मा या अकालपुरुष वाहिगुरू जी, श्री गुरू नानक देव के रूप में साकार प्रकट हुए। समर्थ सतगुरू जी के निर्गुण स्वरूप अकालपुरुष वाहिगुरू जी हैं और वाहिगुरू जी के साकार रूप समर्थ सतगुरू धन्य श्री गुरू नानक महाराज जी हैं। इस निरंकारी ज्योति ने 10 स्वरूप धारण करके सृष्टि का उद्धार किया और अब वे ग्यारहवें स्वरूप में युगों-युगों तक अटल धन्य श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के रूप में सारी सृष्टि का उद्धार कर रहे हैं तथा ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान कर रहे हैं।

इस दिव्य ज्योति ने समय-समय पर पृथक-पृथक स्वरूपों को धारण करके अनेकों कार्य सृष्टि के उद्धार के लिए किए जो कि सृष्टि के अस्तित्व के अन्तिम पल तक जन साधारण का उद्धार करते रहेंगे।

आओ! इस दिव्य व निरंकारी ज्योति के तीसरे स्वरूप में किए गए कार्य तथा उनकी बख्शीशों के जिक्र प्रस्तुत लेख में करते हुए, इस स्वरूप के दर्शन करने का गौरव प्राप्त करें।

1) पारिवारिक जीवन - तीसरे पातशाह धन्य श्री गुरू अमरदास महाराज जी का जीवन अनेक पक्षों से अद्वितीय व लासानी है। आप जी का प्रकाश नगर 'बासरके' जिला अमृतसर में 26 मई सन् 1469 ई. को हुआ। इस पावन स्थान को आज गुरुद्वारा सन साहिब के नाम से याद व सम्मानित किया जाता है। आप जी ने माता लक्ष्मी जी तथा पिता श्री तेजभान (भल्ला वंश) जी के गृह को चार चाँद लगाए।

आप जी चार भाई थे। भल्ला वंश में प्रकट होने के बाद आपने इस वंश को भी धन्यता के योग्य बना दिया।

धंनु सु वंसु धंनु सु पिता
धंनु सु माता जिनि जन जणे ॥ अंग - 1135

श्री गुरू अमरदास जी का बचपन से ही स्वभाव दूसरे भाइयों से विलक्षण था। विनम्रता, बोली में मिठास, प्यार व रसयुक्त दृष्टि, प्रत्येक व्यक्ति को मोह लेती थी। शारीरिक आयु के बढ़ने के साथ-साथ आपके शुभ गुणों की पूँजी भी बढ़ती चली गई। आप जी की शादी माता रामो जी (मनसा देवी जी) जो कि खेमकरन से थे, के साथ हुई।

आप जी के गृह में दो पुत्रों बाबा मोहन जी, बाबा मोहरी जी तथा दो सपुत्रियों बीबी भानी जी तथा बीबी दानी जी ने जन्म लिया।

समर्थ सतगुरू का मिलाप - आप जी को उस शारीरिक आयु में समर्थ सतगुरू श्री गुरू अंगद देव जी के साथ मिलाप हुआ जिस उम्र में सांसारिक मनुष्य इस नाशवान संसार को अलविदा कहने की तैयारी कर लेता है। आप जी को श्री गुरू अंगद देव जी का मिलाप 62 वर्ष की आयु में हुआ।

बहत्तर वर्ष की शारीरिक आयु में आप जी गुरुगद्दी पर सुशोभित हुए और लगभग 21 वर्ष गुरुगद्दी पर बिराजमान रहने के बाद 94 वर्ष की आयु में आप ब्रह्मलीन हो गए। गुरू जी के दसों स्वरूपों में से आप जी ही ऐसे गुरू हुए हैं जिन्होंने बहुत लम्बी आयु को व्यतीत किया। आप जी के अतिरिक्त श्री गुरू नानक देव जी ने भी सत्तर वर्ष की शारीरिक आयु तक सृष्टि का उद्धार किया। यहाँ पर मृत्युलोक व मानवता आदि शब्दों की जगह पर 'सृष्टि' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि श्री गुरू नानक देव जी ने केवल मानवता को ही नहीं बल्कि सारी पृथ्वी को ही जलता हुआ देखा था और सारी धरती को ही नाम वाणी रूपी अमृत का छींटा मार कर ठंडा किया। भाई साहिब भाई गुरदास जी के कथनानुसार -

बाबा देखै धिआन धरि जलती सभि
प्रिथवी दिसि आई॥ भाई गुरदास जी, वार 1/24

सबसे छोटी आयु आठवें गुरू महाराज जी श्री गुरू हरिकृष्ण महाराज जी ने भोगी। यह भी सच्चाई है कि श्री

गुरू अमरदास महाराज जी सांसारिक रिश्ते के अनुसार दूसरे सतगुरू श्री गुरू अंगद देव महाराज जी के समधी लगते थे। समधी होते हुए भी आपने इतनी कठिन सेवा व साधना की कि इतिहास के अन्दर जिसका कोई भी उदाहरण देखने को नहीं मिलता है।

केसर सिंह छिब्बर ने ठीक ही लिखा है कि 'टहलिया नहीं कोई अमरदास जी जैसा बन सका'।

जिस समय आप दूसरे महाराज जी की शरण में आए उस समय आप दूसरे महाराज जी से पच्चीस वर्ष बड़े थे और सांसारिक रिश्ते के अनुसार उनके समधी भी थे। इस उम्र में उन्होंने श्री गुरू अंगद देव जी की सपुत्री बीबी अमरो के माध्यम से गुरवाणी सुनी फलस्वरूप उनके मन में इस सम्बन्ध में जिज्ञासा उठी और उस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु आपने समर्थ सतगुरू की शरण में हाजिर होने के लिए 'बासरके' की तरफ प्रस्थान कर दिया। बीबी अमरो जी को भी आपने अपने साथ चलने के लिए कहा। खडूर साहिब पहुँचने पर आप बाहर ही बैठ गए। जब आपसे इस सम्बन्ध में पूछा गया तो आपने दो टूक शब्दों में कहा कि मैं यहाँ पर 'समधी' के तौर पर नहीं आया हूँ बल्कि मैं तो आपको गुरू धारण करके, नाम की दात प्राप्त करने की, याचना करने आया हूँ।

3) कठिन सेवा-साधना व श्री गुरू अंगद देव जी की बख्शीशें - दूसरे महाराज जी ने आपकी जिज्ञासा व भावना को देखकर आपके ऊपर कृपा कर दी। गुरू घर में आप जी लंगर की सेवा निभाते रहे। बाद में आप जी ने श्री गुरू अंगद देव जी को स्नान करवाने की सेवा सम्भाल ली। गर्मी की ऋतु हो, सर्दी की ऋतु हो अथवा भयंकर बरसात का मौसम हो, आप जी खडूर साहिब से पिछली तरफ को चलते हुए ब्यास जी की तरफ जाते (ताकि गुरू जी की तरफ मुँह रहे और दरिया की तरफ आपकी पीठ रहे) और पानी की गागर भर कर लाते। इस नियम का पालन करते हुए आप जी ने कभी भी खडूर साहिब की तरफ पीठ नहीं की थी। आपकी भावना यह थी कि कहीं मैं अपने सतगुरू जी की तरफ पीठ करने की गुस्ताखी न कर बैठूं।

पूरे बारह वर्षों तक आपने इसी नियमानुसार सेवा निभाई। एक दिन अन्धेरी रात थी, वर्षा हो रही थी तथा आँधी चल रही थी। आप ब्रह्ममुहुर्त में गुरू-गुरू करते हुए पानी की गागर लेकर खडूर साहिब पहुँच गए लेकिन अन्धेरी रात के कारण आप जी फिसल कर एक जुलाहे की कपड़ा बुनने वाली जगह में गिर गए। आपके फिसल जाने के कारण धड़म्म की आवाज आई फलस्वरूप जुलाहे की नींद खुल गई वह बोला, कौन है? कौन है ऐसा व्यक्ति जो हमारी खड्डी (जुलाहो का कपड़ा बुनने की जगह) में गिरता फिर रहा है? उसकी पत्नी ने सहज स्वभाव उत्तर दिया, कौन होगा? वह अमरू बे-घर वाला ही होगा, उसके अलावा इस समय कौन हो सकता है?

यह बात सुनते ही श्री गुरू अमरदास जी बोले, पगली! मैं बे-घर कैसे हूँ मुझे तो जगत गुरू के चरणों में जगह मिली हुई है। बे-घर तो वह होता है जिसका इस संसार में कोई भी न हो। मैं तो जगत गुरू की शरण में हूँ वे तो मेरे लोक व परलोक के रक्षक हैं।

श्री अमरदास जी ने अपनी गागर को सम्भाला और जाकर सतगुरू जी का स्नान करवाया। गुरू जी के वचन का अमोघ बाण लगने के कारण वह महिला पागल हो गई। जब दिन का उदय हुआ तो वह जुलाहा व जुलाही श्री गुरू अंगद देव जी की शरण में आए। जब अन्तर्यामी सतगुरू जी ने सारी वार्ता सुनी तो आपने आशीर्वादों की झड़ी लगा दी। ऐ भली महिला! तुमने इसे बे-घर क्यों कहा? यह तो बेघरों को सहारा देने वाला, सम्मान रहित लोगों को सम्मान दिलाने वाला, धैर्य रहित लोगों को धैर्य देने वाला, आश्रय रहित लोगों को आश्रय देने वाला है, इस प्रकार के बारह वरदान आपने श्री अमरदास जी को प्रदान किए।

इसके बाद दूसरे पातशाह जी ने आप जी को व्यास के तट पर गोइन्दवाल नगर के निर्माण के लिए भेजा। आप जी की सेवा व साधना को ध्यान में रखते हुए दूसरे पातशाह जी ने सन् 1552 ई. में आपको गुरुगद्दी पर आसीन कर दिया। आप जी ने बहुत दीर्घायु तक एक अच्छे मनुष्य के रूप में, एक सेवक के रूप में, एक गुरू के रूप में, गुरवाणी के रचनकार के रूप में तथा स्वयं परमेश्वर स्वरूप होकर संगत का उद्धार किया। चौरासी वर्ष की शारीरिक आयु में गुरवाणी के अवतरण का प्रवाह आप जी के ही हिस्से में आया, जिसका कोई भी उदाहरण कहीं भी नहीं मिलता है।

4) समर्थ सतगुरू के साथ जुड़ने की गाथा - आप जी शुरू से ही धार्मिक प्रवृति के धारणी थे, इसीलिए आप प्रत्येक वर्ष हरिद्वार की यात्रा पर जाया करते थे। ऐसा इतिहास में जिक्र मिलता है कि आप बीस बार हरिद्वार गंगा स्नान हेतु गए, अन्तिम बार वापिस लौटते समय ऐसी घटना घटित हुई कि आपकी जीवन धारा ही बदल गई।

इस बार वापिस लौटते हुए आप जी का एक ब्रह्मचारी साधू के साथ मिलाप हो गया और दोनों का पारस्परिक प्रेम भी काफी हो गया। दोनों इकट्ठे ही यात्रा करते रहे। एक दिन उस साधू ने पूछा कि आपका गुरू कौन है? आप ने लम्बा श्वास छोड़ते हुए कहा कि अभी तक तो कोई पूरा

मिला ही नहीं है। यह सुनकर ब्रह्मचारी क्रोधावेश में आ गया और बोला कि अरे निगुरे व्यक्ति का तो दर्शन भी बुरा है। मैं तो भ्रष्ट हो गया हूँ क्योंकि आपके हाथों से खाना खाता रहा।

इस प्रकार के वचनों ने आपके अन्दर बेचैनी फैला दी। इस बेचैनी ने ही गुरू के प्रति भावना, श्रद्धा व वैराग्य को जन्म दिया। आप अधिकतर अरदास भाव में ही रहने लगे। अब आपका भाग्योदय हुआ और आपकी अरदास पूरी हो गई क्योंकि -

जिन मसतकि धुरि हरि लिखिआ
तिना सतिगुरु मिलिआ राम राजे ॥ अंग - 450

आपने अपने छोटे भाई के घर से गुरवाणी की रसयुक्त आवाज ब्रह्ममुहुर्त में सुनी -

काइआ आरणु मनु विचि लोहा
पंच अगनि तितु लागि रही ॥
कोइले पाप पड़े तिसु उपरि
मनु जलिआ संन्ही चिंत भई ॥ 3 ॥
भइआ मनूरु कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिलै तिनेहा ॥
एकु नामु अंम्रितु ओहु देवै
तउ नानक त्रिसटसि देहा ॥ 4 ॥ 3 ॥ अंग - 990

इस वाणी का आपके मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि जिसकी वाणी थी, उसे ही मिलने की लालसा, आपके मन में उत्पन्न हो गई, फलस्वरूप आप उनकी शरण में चले गए और सेवा व सिमरन करके उनके कृपा पात्र बन गए तथा गुरू पदवी को ही प्राप्त हो गए।

5) सिक्ख धर्म की अगुवाई - आप जी ने 22 वर्षों तक सिक्ख धर्म की अगुवाई की और गोइन्दवाल साहिब को आपने सिक्ख का केन्द्र ही बना डाला। 22 मंजियों की स्थापना करके आपने दूर-दूर तक गुरमति का प्रचार किया, समाज में पड़ चुकी कुरीतियों को दूर करके आपने नवीन व सही रीतियों को स्थापित किया। आप जी ने सती प्रथा के विरुद्ध पुरजोर आवाज उठाई। यथा -

सतीआ एहि न आखीअनि जो मड़िआ लगि जलंन्हि॥
नानक सतीआ जाणीअन्हि जि बिरहे चोट मरंन्हि ॥
भी सो सतीआ जाणीअनि सील संतोखि रहंन्हि ॥
सेवनि साई आपणा नित उठि संम्हालंन्हि ॥
अंग - 787

जाति पात बारे -

जाति का गरबु न करि मूरख गवारा ॥
इसु गरब ते चलहि बहुतु विकारा ॥ अंग - 1128

शरीब से वर्जित

माणसु भरिआ आणिआ माणसु भरिआ आइ ॥
जितु पीतै मति दूरि होइ बरलु पवै विचि आइ ॥
आपणा पराइआ न पछाणई खसमहु धके खाइ ॥ जितु
पीतै खसमु विसरै दरगह मिलै सजाइ ॥
झूठा मदु मूलि न पीचई जे का पारि वसाइ ॥
नानक नदरी सचु मदु पाईऐ
सतिगुरु मिलै जिसु आइ ॥ अंग - 554

6) सच्ची व सुच्ची शादीशुदा जिन्दगी के बारे में - आप जी ने एक अच्छे दम्पति के जीवन के गुण बतलाते हुए फुरमान किया -

धन पिरु एहि न आखीअनि बहनि इकठे होइ ॥
एक जोति दुइ मूरती धन पिरु कहीऐ सोइ ॥
अंग - 788

7) राजाओं के बारे में - आप जी ने जहाँ एक तरफ गृहस्थियों, साधुओं, सन्यासियों का मार्ग दर्शन किया वहीं दूसरी तरफ आपने राजाओं को पुरजोर ढंग से कहा कि राज का धर्म न्याय करना है और न्याय का तराजू पकड़ कर पूरा तौलना है। यथा -

तखति राजा सो बहै जि तखतै लाइक होई ॥
जिनी सचु पछाणिआ सचु राजे सेई ॥
एहि भूपति राजे न आखीअहि दूजै भाइ दुखु होई ॥
कीता किआ सालाहीऐ जिसु जादे बिलम न होई ॥
निहचलु सचा एकु है गुरमुखि बूझै सु निहचलु होई ॥
अंग - 1088

8) संगत तथा पंगत का सिद्धान्त - आप जी ने अकबर जैसे बादशाह को दर्शन देने से पहले इस सिद्धान्त का पालन करने की हिदायत की कि 'पहले पंगत फिर संगत'। यही कारण था कि अकबर ने भी पहले पंक्ति में बैठकर भोजन ग्रहण किया उसके बाद गुरू जी से आप मिल सके। इस सिद्धान्त के द्वारा छूत-छात व ऊंच-नीच की बुराई से मुक्त होने का सन्देश दिया।

9) दुखी लोगों पर कृपा - आप जी ने प्रेमा कोढ़ी पर कृपा करके उसे नया व निरोग जीवन प्रदान किया और उसे समझाया कि 'परमेसर ते भुलिआँ विआपनि सभे रोग।।' 'हरि बिसरत सदा खुआरी।।' लेकिन यदि समर्थ गुरू कृपा दृष्टि कर दे तो 'लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ।। अंग - 44'

प्रेमा कोढ़ी के रोग को दूर करके आपने उसे निरोगी काया प्रदान की। इसके बाद गुरू जी के वचनों पर पहरा देते हुए सीहा उप्पल ने जाति-पात के बन्धनों को तोड़ते हुए

अपनी बेटी को उससे ब्याह दिया। गुरू जी ने उन दोनों को नए नाम 'मथो मुरारी' के नाम से निवाजा।

10) सुख दुख एक समान – आप जी ने सुख व दुख में पढ़ी जाने वाली वाणी आनन्द साहिब की रचना करके मृत्यु के समय की जाने वाली रस्मों को समाप्त किया तथा मृतक संस्कारों के बारे में गुरमति मर्यादा दृढ़ करवाई।

गुरमति के प्रचार के सम्बन्ध में आपकी बख्शीशें –

1. सिक्खी के प्रचार हेतु 22 मंजियों की स्थापना

2) बैसाखी व दीवाली को जोड़-मेले मनाने की रीति

3. बाउली का निर्माण

4. गोइन्दवाल को सिक्खी को केन्द्र स्थापित किया

5. अमृतसर सरोवर की खुदाई की शुरूआत

6. लंगर प्रथा को सुदृढ़ किया

आप जी ने दातू तथा दासू के विरोध को भी खिले माथे स्वीकार्य किया तथा विनम्रता का सबूत देते हुए हमारे जैसे कल्युगी जीवों को इस सम्बन्ध में प्रेरणा प्रदान की।

अनेकों प्रकार की कृपा करते हुए आप जी 1 सितम्बर सन् 1574 ई. को श्री गुरू रामदास जी को गुरुगद्दी सौंप कर, स्वयं ब्रह्मलीन हो गए।

भट्ट भल्ल जी के द्वारा आप जी की उपमा निम्न शबद के माध्यम से प्राप्त है –

रुद्र धिआन गिआन सतिगुर के
कबि जन भल उनह जो गावै ॥
भले अमरदास गुण तेरे
तेरी उपमा तोहि बनि आवै ॥ 1 ॥ 22 ॥

अंग – 1396

समर्थ सतगुरू श्री गुरू अमरदास जी महाराज जी, हम सबको गुरमति की समझ तथा प्रेम युक्त जीवन प्रदान करने की कृपा करें।

(पृष्ठ 5 का शेष)

गई बन्दगी भक्ति कहलाती है। इसके बाद भक्ति में से रस आना शुरू हो जाता है। जिन्होंने परमात्मा की श्रद्धा सहित पूजा की है, फिर उनका अन्य किसी भी तरफ चित्त भटकता नहीं है।

जिन सरधा राम नामि लगी
तिन् दूजै चितु न लाइआ राम ॥ *अंग – 444*

इसकी प्राप्ति के लिए स्वयं को समर्पित करना पड़ता है –

आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ ॥
एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देइ ॥

अंग – 1378

अरदास में जुड़ना पड़ता है –

कबीर केसो केसो कूकीऔ न सोईऔ असार ॥
राति दिवस के कूकने कबहू के सुनै पुकार ॥

अंग – 1376

हरि हरि क्रिपा करहु जगजीवन
मै सरधा नामि लगावैगो ॥ *अंग – 1310*

अपने मन की अवस्था जिज्ञासुजन के लिए इस प्रकार की होनी आवश्यक है कि वह अपने सतगुरू के प्रति प्रत्येक समय श्रद्धा रूपी सेज को बिछा कर रखे –

मेरै मनि तनि लोचा गुरमुखे राम राजिआ
हरि सरधा सेज विछाई ॥ *अंग – 777*

प्रतीति के द्वारा मंजिल-ए-मकसूद तक पहुँचा जा सकता है। अतः जिज्ञासु के लिए आवश्यक है कि वह प्रेम, विश्वास, सम्मान, लालसा व श्रद्धा के सोपान पर चढ़ता हुआ भक्ति में प्रवेश करके, लिव वाली अवस्था के माध्यम से मिलाप तक पहुँचने के लिए अरदास में प्रत्येक समय जुड़ा रहे तभी प्रतीति की पूर्णतः होकर प्राप्ति तक पहुँचा जा सकता है –

जा कै मनि गुर की परतीति ॥
तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥ *अंग – 283*

यही आत्म मार्ग है और इसी आत्म मार्ग पर चलकर ही मनुष्य जन्म सफल हो सकता है। इसी मंजिल-ए-मकसूद तक पहुँचने के लिए आत्म मार्ग मैगजीन के माध्यम से रूहानी सामग्री, महापुरुषों तथा अन्य गुरुमुख प्यारों के अनुभवी प्रवचन, आप जी के रूहानी मार्ग दर्शन हेतु आप जी के पास पहुँच रहे हैं।

गुरु चरणों में अरदास है कि वे सभी को आत्म मार्ग की समझ प्रदान करें ताकि श्रद्धा के माध्यम से प्रतीति की अवस्था प्राप्त करके हम इसी जन्म में मनुष्य जन्म को सफल कर लें।

गुरु नानक आगमन

(श्री गुरु नानक चमत्कार)

पद्म भूषण डा. भाई वीर सिंह जी

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 49)

राजौली - गया के क्षेत्र में श्री गुरू नानक देव जी कई स्थानों पर गए तथा जगत का उद्धार किया, जिसके चिन्ह आज तक भी कहीं-कहीं मिलते हैं। इन्हीं जगहों में से एक जगह है - राजौली। यहाँ पर एक कल्याण शाह नाम का फकीर तपस्या कर रहा था। आपके स्थान पर आठों पहर धूनी जलती रहती थी और आप बैठे तपस्या करते रहते थे। श्री गुरू नानक देव जी अपनी जगत यात्रा के दौरान जहाँ एक तरफ लोगों को परमात्मा के मार्ग पर लगाते थे, वहीं दूसरी तरफ आप, रूहानी तौर पर अटके हुए लोगों को आगे भी बढ़ाते थे, अर्थात भूले हुओं को सही मार्ग पर भी डालते थे। जो साधक मंजिल के पास पहुँचने ही वाले थे, उन्हें आप सहारा देकर उनकी मंजिल पर भी पहुँचा देते थे। जब गुरू जी राजौली में जा टिके तो उनके कीर्तन की बात इस फकीर के कानों में भी पड़ी, फलस्वरूप आपने भी लुक-छिप कर कीर्तन श्रवण किया। इस हो रहे कीर्तन के शब्दों के भाव ने फकीर को मोहित कर लिया, फलस्वरूप आप लोक लाज को छोड़कर सतगुरू जी के पास आ गए और आपने अपने दिल के सारे दुख सुख, गुरू जी को कह डाले। सतुगरू जी ने कृपा की, जहाँ पर फकीर जी रूहानी मार्ग पर अटके हुए थे, वहाँ से 'नाम रस' प्रदान करके आपने, आपको सच्चे ज्ञान में स्थित कर दिया और गुरू जी वहाँ से प्रस्थान कर गए।

उसी समय से वहाँ पर दो स्थान चले आते हैं। एक स्थान वह है जहाँ पर इस फकीर की अब तक धूनी चली आती है, इसे छोटी संगत कहते हैं। दूसरा स्थान वह है जहाँ पर गुरू जी टिके थे और फकीर कल्याणशाह गुरू जी की शरण में आया था, उसे बड़ी संगत कहते हैं। पहली जगह की देखरेख मुसलमान करता है और दूसरी जगह की देखरेख उदासी सन्त करता है।

20. सोने की मोहरों के कोयले तथा सूली की शूल

बाहर देखो! किस प्रकार की काली घटाएँ घिर चुकी हैं। नीले-नीले आसमान पर उमड़ रहे बादल कितने सुन्दर लग रहे हैं। हवा भी ठण्डी वह रही है, जिसने कि सारी तपन को पी लिया है। वर्षा ऋतु आ गई है। महाराज जी! चौमासा चल रहा है। इस ऋतु में तो ज्यादा चलना-फिरना नहीं चाहिए और कहीं पर टिकाना करके बैठ जाना चाहिए। रास्ते की थकावट बहुत सताती है, जगह-जगह पर पानी भरा हुआ है, कच्चे मार्ग हैं, कीचड़ ही कीचड़ है। इस ऋतु में व्यक्ति बीमार भी जल्दी हो जाता है। इसीलिए इस ऋतु को कच्ची ऋतु कहा जाता है। रात के समय कभी ओस पड़ती है, कभी हुमस-सी लगती है, कभी ठंडी हवा चलती है और कभी ठंडी हवा के झोंके आते हैं। इस ऋतु में साँप बिच्छू भी खूब निकलते हैं। अतः महाराज जी! ये तो कहीं एक जगह पर टिक जाने के दिन हैं और कहीं एक जगह टिक कर ही साईं का गुणगान करते हैं। यह ठीक है कि आपको अपनी कोई परवाह नहीं है, लेकिन प्यार वालों को तो तकलीफ उठानी पड़ती है। दूसरा मैं भी इस ऋतु में ज्यादा दुखी हो जाता हूँ, इसलिए मेरी तो यह विनती है कि कहीं पर कुछ दिन टिक जाते हैं।

यह प्यार व दर्द की बातचीत सुनकर रोगियों को निरोग कर देने वाले श्री गुरू नानक देव जी बोले, मरदाना जी! तुम सत्य बोल रहे हो, चौमासे की ऋतु ऐसी ही होती है लेकिन बन्धु! जिन्होंने उस परम पिता परमात्मा की चाकरी का दायित्व उठाया हुआ है, उन्हें तो इस ऋतु में भी आराम कहाँ है? जो पत्र-वाहक या सन्देश-वाहक होते हैं, उन्हें आराम कहाँ है, वे तो निरन्तर जन-जन तक सन्देश पहुँचाते ही रहते हैं। वह देखो! एक डाकिया पत्र लेकर उसकी मंजिल तक, उसे पहुँचाने जा रहा है। इसी प्रकार उस 'साहिब' (परमात्मा) की चाकरी करनी कठिन है, जिस प्रकार से वह चलाता है, उसी प्रकार से चलना पड़ता है, जिस प्रकार की प्रेरणा देता है, उसी प्रकार से चलता है। वह मालिक ही हमें किसी कार्य हेतु लेकर जा रहा है।

मरदाना - धन्य है आपकी चाकरी, धन्य हैं आपके साहिब और धन्य है आप स्वयं तथा धन्य है आपका ढाडी। महाराज जी! आपके अन्दर तो आसमान जैसी शक्ति है लेकिन मेरे शरीर के अन्दर तो इतनी शक्ति नहीं है। मेरा मन इस

ऋतु में चलने का नहीं हो रहा है, आप मेरे लिए ही इस ऋतु में कहीं चार दिन ठहर जाओ।

गुरू जी मरदाना जी के इस प्यार को समझते थे। जब गुरू जी स्वयं कठिन परिश्रम में रहते थे तो मरदाना अपनी थकान, भूख या अन्य किसी जरूरत की पूर्ति हेतु लज्जावश चुप नहीं होता था, बल्कि बोल-बोल कर, अपने वास्ते डाल डाल कर उन्हें आराम करने के लिए कहीं न कहीं टिका ही लेता था। बसन्त ऋतु से चले हुए गुरू जी कहीं पर ढंग से रुके ही नहीं थे। आप कहीं दो दिन, कहीं चार दिन रुकते हुए और 'सतिनाम' का उपदेश देते हुए आगे ही आगे चलते जा रहे थे और अब बरसात शुरू हो गई थी। सारी गर्मी की ऋतु में लगभग चार महीनों तक आपने लगातार यात्रा जारी रखी और उपदेश देकर रूहानी तौर पर मरे हुए लोगों को जीवन दान दिया। यही कारण था कि अब मरदाना चाहता था कि अब मेरे सुन्दर मालिक जी (श्री गुरू नानक देव जी) कहीं पर चार दिन रुक कर आराम करें। सतगुरू जी उसके प्यार को सम्मान देने के लिए बोले, मरदाना जी! ठीक है अब जहाँ भी रास्ते में कोई नगर आएगा तो चौमासे के समय में वहाँ पर ठहर जाएँगे।

साईं जी की कृपा से एक ऊँचा सा स्थान, सुन्दर टिकाना और अच्छा सा गाँव आ गया जिसके बाहर की तरफ, लगभग एक कोस की दूरी पर एक सहारा सा देखकर गुरू जी ने टिकाना कर दिया। मरदाना खुश हो गया कि नित्य-प्रतिदिन का सफर समाप्त हुआ। भले ही चौमासे के लिए ही सही, मेरा प्यारा, दस-बीस दिन समय पर सोएगा, समय पर भोजन ग्रहण करेगा और सुखमय दिन व्यतीत करेगा।

उस गाँव में आबादी अच्छी थी, मानो वह छोटा सा कस्बा ही था। वहाँ पर एक अच्छा खाता-पीता क्षत्रिय परिवार रहता था जो कि परमार्थ की लगन वाला था। वह हमेशा आने-जाने वाले साधू-सन्त की सेवा व दर्शन करता तथा यथासम्भव दान भी करता था। उसे पता चला कि बाहर गाँव से कुछ दूरी पर कोई साधू जी आए हैं। वे ऐसा मनोहर कीर्तन करते हैं कि जिसे सुनकर दरिया भी रुक जाते हैं और उनके दर्शन करके एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। वह क्षत्रिय, गुरू जी के दर्शन करने के लिए जब आया तो उस समय कीर्तन हो रहा था तथा गुरू जी अपने दिव्यानन्द में बैठे हुए थे। मन्द-मन्द समीर बह रही थी। वह भी मत्था टेककर बैठ गया और उसके नेत्र भी कीर्तन का रस पीकर भारी होने लग पड़े तथा धीरे-धीरे बन्द हो गए। जब वे अन्दर की तरफ यानि कि अपने निजत्व की तरफ मुड़े तो उन्हें ऐसा स्वाद आया कि समय का कुछ आभास ही न रहा कि कितना समय बीत चुका है। जब आपके नेत्र खुले तो पता चला कि यह तो बहुत सारी घड़ियां बीत चुकी हैं। हाँ अब उस क्षत्रिय को समझ आई कि वास्तव में यही साईं का कीर्तन है जो कि समय को भी जीत लेता है यानि काल का ज्ञान जिसकी तासीर के आगे लुप्त हो जाता है। हाँ उसने ऐसा कीर्तन कभी भी सुना नहीं था जो कि काल के वेग को भी बेअसर कर दे। उसने ऐसे दर्शन कभी भी नहीं किए थे, जिसके फलस्वरूप मन-मयूर ऐसे झूमने लग पड़े कि वह दूर होने का नाम ही नहीं ले।

इस प्रकार से मोहित हुआ क्षत्रिय कामो-काजों के खिंचाव के कारण कुछ समय बाद घर की तरफ लौटा। अब वह नित्य प्रतिदिन गुरू जी के सान्निध्य में आने लगा और कीर्तन का रसपान करने लगा। एक दिन उसके मन में इतनी अधिक श्रद्धाभावना बढ़ी कि उसने यह प्रण कर लिया कि नित्य प्रतिदिन गुरू जी के दर्शनार्थ आना है और कभी इस नियम के प्रति गैर हाजिर नहीं होना है। जिस दिन इस नियम का पालन न हो सके तो उस दिन जलपान भी ग्रहण नहीं करना है।

अब वह क्षत्रिय नित्य प्रतिदिन बिना किसी नागा दर्शनों का लाभ प्राप्त करने लग पड़ा। कभी वह ब्रह्ममुहुर्त का कीर्तन श्रवण करता और कभी सायंकाल में सोदरु रहिरास का कीर्तन श्रवण करता। हाँ, वह गुरू जी का प्रेमी बन गया। भोजन पानी की सेवा भी करता तथा गुरू जी के डेरे पर झाड़ू वगैरह की सेवा भी करता। उसके रास्ते में एक बनिए की दुकान थी जो कि नित्य प्रतिदिन यह देखता था कि यह क्षत्रिय बिना नागा उस मार्ग से निकलता है, उसके मन में आया कि इसे पूछना चाहिए कि यह रोज कहाँ जाता है। इस प्रकार से उसने आवाज लगाकर उसे अपने पास बुलाया और पूछा कि ऐ बन्धु! पहले तो तुम इस मार्ग से कभी-कभी ही जाया करते थे, लेकिन अब रोज ही इस मार्ग से जाते हो। तुम्हें किस चीज की लगन लगी हुई है जो कि तुम रोज ही बिना नागा इस मार्ग पर जाते हो?

इस प्रश्नोत्तर के रूप में क्षत्रिय ने कहा, ऐ बन्धु! बाहर कुटिया वाले बाग में कोई बहुत ही उच्च कोटि के महापुरुष ठहरे हुए हैं, मैं तो उनका सत्संग करने जाया करता हूँ। उनका दर्शन बहुत प्यारा है, इसलिए रोजाना जाने का चस्का पड़ गया है। यह बात सुनकर उस बनिए ने कहा कि फिर जो ऐसे दर्शन हैं, तो वह हमें भी करवाओ।

क्षत्रिय ने कहा आओ! मेरे साथ चलो, मैं आपको अपने

साथ ले चलता हूँ। इस प्रकार एक दिन वह बनिया भी उस क्षत्रिय के साथ चल पड़ा।

यह जो गाँव की सड़क बाहर की तरफ जाती थी, आगे जाकर दो भागों में बँट जाती थी। एक रास्ता तो सीधी कुटिया की तरफ जाता था, जहाँ कि गुरू जी ठहरे हुए थे और दूसरा रास्ता एक अन्य गाँव की तरफ चला जाता था। इस गाँव के साथ वाली बस्ती में कुछ बुरे आचरण वाली स्त्रियाँ भी रहती थीं। जब ये दोनों लोग उस सड़क के उस बिन्दु पर पहुँचे जहाँ पर कि सड़क दो दिशाओं में बँट जाती थीं, तो दूसरी सड़क की तरफ से एक स्त्री, जो कि उसी बुरे आचरण वाली बस्ती में रहने वाली थी, आ रही थी। उसका रंग, रूप इस बनिए के मन को मोह गया। उसका मन, उस स्त्री को मिलने के लिए खिंच गया लेकिन लज्जावश वह उस क्षत्रिय के साथ चलता गया। इस प्रकार से वे सतगुरू जी के डेरे पर पहुँच गए और गुरू जी के दर्शन करके आनन्द की प्राप्ति की। उधर बनिए के मन के अन्दर जो विकार वाला काँटा चुभ रहा था, उसने उसके मन को टिकने ही नहीं दिया। क्षत्रिय तो सेवा कार्यों में लग गया लेकिन वह बनिया मानसिक तौर पर कभी विकार की तरफ और कभी सेवा-सिमरन की तरफ झूलता रहा। कुछ समय गुरू जी के स्थान पर रहने के बाद दोनों लौट आए। अब उस बनिए को ऐसी आदत पड़ गई कि वह उस गन्दी बस्ती की तरफ जाने लग पड़ा। सोदरु के समय दोनों लोग गाँव से इकट्ठे ही आते लेकिन जहाँ से सड़क दो दिशाओं में होती थी, वहाँ से वह क्षत्रिय सत्संग की तरफ चला जाता और वह बनिया कुसंग की तरफ चला जाता। क्षत्रिय ने उस बनिए को कई बार समझाया कि तुम गाँव से मेरे साथ ही आते हो लेकिन मैं सत्संग की तरफ जाता हूँ जबकि तुम कुसंग की तरफ चले जाते हो, यह कोई अच्छी बात नहीं है। इस पर विजय प्राप्त करो, आत्म-विश्वास के माध्यम से स्वयं पर नियन्त्रण स्थापित करो और स्वयं को अच्छी तरफ लगाने का प्रयास करो लेकिन उस पर क्षत्रिय की किसी भी बात का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा।

उस क्षत्रिय को सत्संग के प्रति इतना प्रेम हो गया कि वह कभी-कभी तो सोदरु रहिरास साहिब जी का पाठ श्रवण करने के बाद भी वहीं पर ठहर जाता और भोजन-पानी भी उसके घर से वहीं पहुँच जाता। वहाँ पर वह सोहिले का पाठ श्रवण करके वापिस घर लौटता। शनैः शनैः उसे रंग लगता गया और नाम का रस अन्दर बसता गया।

एक दिन गाँव से जाते समय रास्ते में पुनः दोनों के बीच वार्ता शुरू हो गई। क्षत्रिय उसे सत्संग के भले मार्ग के बारे में उपदेश कर रहा था जबकि वह बनिया उसे क्षण भंगुर रसों की महानता के बारे में, जो कि पानी के बुलबुले की भांति क्षण भर में समाप्त हो जाने वाले होते हैं, बतलाने लग पड़ा। इसके बाद उस बनिए ने हँस कर कहा कि प्रिय बन्धु ! लो फिर आज हम लोग इस बात पर विचार करेंगे। तुम चले हो सत्संग की तरफ जबकि मैं कुसंग की तरफ चला हूँ। यह वह जगह है, जहाँ से दोनों सड़कें इधर-उधर की तरफ जाती हैं और वह सामने पीपल का वृक्ष है। आज हममें से जो पहले आएगा वह वृक्ष के नीचे दूसरे की प्रतीक्षा करेगा क्योंकि हम लोग आते तो इकट्ठे हैं लेकिन वापिस अलग-अलग लौटते हैं। आज हम लोग यहाँ पर बैठकर विचार करेंगे कि तुम कौन सा लाभ लेकर आते हो और मैं कौन सा लाभ लेकर आता हूँ। इसके बाद हम लोग निर्णय करेंगे कि कौन सा व्यक्ति गुण वाला कार्य करता है और कौन सा व्यक्ति गुणहीन कार्य करता है। क्षत्रिय ने कहा चलो ठीक बात है, लेकिन मुझे इस बात पर कोई शंका नहीं है कि मेरे मार्ग में किसी प्रकार ाक कोई घाटा है, बल्कि मेरे मार्ग में तो लाभ ही लाभ है, दूसरी तरफ तुम्हारे मार्ग में हानि ही हानि है और उसमें किसी प्रकार के लाभ की कोई गुंजाइश नहीं है। इसमें घाटा है शरीर का, इज्जत का, धन का व मन का। बनिए ने कहा, चलो जिस प्रकार से आप समझो उसी प्रकार से ठीक है, लेकिन विचार करने में तुम्हारा क्या हर्ज है? घड़ी दो घड़ी प्रतीक्षा की ही तो बात है न?

इस प्रकार से सलाह करके दोनों अपने मार्ग पर निकल गए। सिक्ख तो गुरू जी के दरबार में पहुँच गया, आगे वहाँ पर कीर्तन हो रहा था, उसके कानों में परमात्मा के यशगान की आवाज पड़ी, मन शान्त हुआ और आन्तरिक स्वाद उसे आया, फलस्वरूप टिक कर बैठ गया।

उधर वह बनिया अपने मन की रुचि के अनुसार जब उस घर में पहुँचा तो दैवनेत से वह घर सूना पड़ा हुआ था अर्थात जिससे मिलने गया था, वह नहीं मिला क्योंकि वह मन्दा शरीर किसी अन्य गाँव को चला गया था। अतः वह निराश होकर वापिस लौट आया तथा पूर्व निर्धारित जगह पर आकर बैठ गया और अपने मित्र की प्रतीक्षा करने लग पड़ा। चूँकि वह जल्दी ही लौट आया था, इसलिए उसका प्रतीक्षाकाल लम्बा होता जा रहा था। अब वह सोच-विचार में बैठा हुआ था। सोच-विचार में पड़ा हुआ व्यक्ति कई बार धरती को ही खोदने लग पड़ता है। अतः यह भी अकेला बैठा हुआ धरती को खोदने लग पड़ा। जब उसे धरती खोदते हुए

कुछ समय बीत गया तो उसे वहाँ से एक सोने की मोहर मिल पडी। सोने की मोहर को देखकर वह बनिया वृत्ति वाला व्यक्ति अत्यन्त प्रसन्न हो गया। अब वह अपनी कमर के साथ बँधी हुई छुरी को कमर से खोलकर धरती को और भी खोदने लग पड़ा कि कहीं और भी मोहरें मिल जाएँ। इतने में एक मिट्टी के दबे हुए बर्तन के मुँह के साथ उसकी छुरी टकरा गई फिर तो वह बनिया उस बर्तन को चारों तरफ से छुरी के द्वारा खोदने लग पड़ा। अब वह इसे खोदने के कार्य में व्यस्त हो गया, फलस्वरूप उसे प्रतीक्षा का समय भी बेअसर प्रतीत होने लग पड़ा। जब उसने उस सारी जगह को खोद लिया तो उसने देखा कि यह एक बर्तन है। जब उसने उस बर्तन के मुँह को खोला तो उसे पता चला कि इसके अन्दर ऊपर से नीचे तक कोयले ही कोयले भरे पड़े हैं।

इतने में वह गुरू का सिक्ख भी आ गया लेकिन वह लंगड़ाता हुआ आ रहा है। उसके एक पैर में तो जूता पहना हुआ था जबकि दूसरे पैर में से खून ही खून बह रहा था, उसकी एड़ी में गहरा घाव हो गया था, जिस कारण से वह लंगड़ाता हुआ चल रहा था। जब बनिए ने उसे इस तरह से लंगड़ाते हुए आते देखा तो उसने कहा, बन्धु जूते को झाड़ कर पहन लो कहीं कोई कंकड़ वगैरह आ गया होगा। उस समय उस सिक्ख ने कहा, ऐ मित्र! आज जब मैं गुरू के घर से बाहर निकला तो जूते तक पहुँचने से पहले ही पैर में एक नुकीला काँटा चुभ गया। जब मैंने उस काँटे को खींच कर बाहर निकाला तो उसका कुछ भाग भीतर ही रह गया। इसी कारण से मैंने पैर पर कपड़ा बाँधा है और जूते को घसीटते हुए व लंगड़ाते हुए आ रहा हूँ।

बनिया - अच्छा भाई! तो फिर आओ, बैठ जाओ और कुछ आराम कर लो साथ ही कुछ विचार भी कर लें, उसके बाद चलेंगे।

सिक्ख - भाई जी! तो फिर आओ बै ठजाओ, और कुछ आराम कर लो, साथ ही कुछ विचार भी कर लें, उसके बाद चलेंगे।

सिक्ख - भाई जी! जो हुआ सो हुआ। सत्संग अच्छी चीज है, सेवा करनी अच्छी चीज है, जबकि पापों का मार्ग सदैव खोटा ही है।

बनिया - नहीं भाई! या तो तुम कारण बताओ अन्यथा तुम्हारे गुरू के पास चलते हैं ताकि वे इसका कारण बताएँ।

उस समय दोनों वापिस गुरू जी के पास चले गए। सतगुरू जी उन दोनों को देखकर मुस्कुरा पड़े। मरदाना भी इस मुस्कुराहट को देखकर सावधान होकर बैठ गया। इतने में बनिए ने अपने नेत्र नीचे करके हाथ जोड़ लिए तथा अपने पाप की कथा सच्ची-सच्ची कह सुनाई और कहा कि हे महाराज जी! इस बात का कारण हम जानना चाहते हैं कि पाप कर्म को मोहर का फल लगा जबकि सेवा को फल यह लगा कि इसके पैर में कांटा चुभा है?

गुरू जी - अब तुम लोग चुप कर रहो और कुछ भी बोलो नहीं।

बनिया - जैसी आपकी मर्जी हो, महाराज जी! लेकिन हम लोग मूर्ख हैं, हमारी समझ में नहीं आती है। कृपा करके इस रहस्य पर से पर्दा उठाने की कृपा करें कि पाप कर्म को मोहरों का फल क्यों लगा है? उस समय दयावान गुरू जी ने अपना पावन हाथ, उस बुरे कर्मों वाले के सिर को स्पर्श करवाया और आप दया के घर में आ गए। इसके बाद आप ने फुरमाया -

ऐ भोले पुरुष! तुम्हारे पापों को एक मोहर का फल नहीं लगा है, अपितु तुम्हारे पापों की आँधी ने तुम्हारी मोहरों के वृक्ष को झकझोर डाला है, फलस्वरूप सभी फल गिर कर बेकार हो गए हैं, अब तो केवल मोहर रूपी एक फल ही शेष रह गया है। जो यह कोयलों से भरा हुआ मटका तुम देख रहे हो, यह मोहरों से भरा हुआ मटका था। किसी परमात्मा के प्यारे को तुमने एक मोहर दान में दी थी वह एक मोहर ही सैंकड़ों गुना अधिक भलीभूत हो गई थी लेकिन तुम जैसे-जैसे पाप कर्म करते गए वैसे-वैसे ही तुम्हारे पुण्यों के रूप में फलीभूत मोहरें सड़ती चली गईं। हाँ तुम इस बात को जान लो कि तुम्हारे द्वारा किए गए पाप कर्मों ने, तुम्हारे द्वारा किए गए शुभ कर्मों व उनके फल ने उन्हें जलाकर राख कर डाला है। बस तुम्हारा एक फल ही शेष रह गया है जिसे कि तुम यहाँ पर ले आए हो ताकि तुम्हें यह समझ आ जाए कि तुम्हारे द्वारा किए गए पापों ने इस प्रकार की अनेकों मोहरों को समाप्त कर डाला है अथवा तुमसे दूर कर दिया है अथवा तुम्हारे द्वारा बोए गए शुभ कर्मों के फल को हरा करने के स्थान पर कुसंग रूपी बुरे कर्मों के फल को जलाकर राख या कोयले बना डाला है। दूसरी तरफ इस पुरुष द्वारा की गई सेवा व सत्संग ने इसके पापों को नाश कर दिया है। इसके पूर्वजन्म के कुछ कर्म ही ऐसे थे कि जिनकी बदौलत इसे इस जन्म में सूली पर लटकाया जाना था लेकिन ज्यों-ज्यों यह सेवा कार्यों में आया ज्यों-ज्यों इसके अन्दर परमात्मा का यशगान करने से वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ, ज्यों-ज्यों इसने उसका नाम जपकर उसे याद किया त्यों-त्यों इसके बुरे कर्म नष्ट होते चले गए और घटते-घटते सूली की जगह शूल ही रह गई, जो कि एक काँटे की तरह से चुभ कर उस महा दुख से छुड़ा गई।

दूसरी विचार की बात यह है कि ऐ बन्धु! ज्यों-ज्यों तुम विषयों में प्रवृत्त होते चले गए त्यों-त्यों तुम्हारी वासनाएँ और भी अधिक खोटी होती चली गईं। दूसरी तरफ इस पुरुष ने ज्यों-ज्यों सत्संग किया है त्यों-त्यों इसकी वासनाएँ पावन होती चली गईं। फलस्वरूप इसकी रुचि भलाई की तरफ, सेवा की तरफ और सत्संग की तरफ बढ़ती चली गई। इस प्रकार से भविष्य के लिए इसके द्वारा किए जाने वाले कर्मों की दिशा, एक सही मार्ग पर चल पड़ी।

यह सुनकर उस बनिए का दिल एक प्रकार से काँप उठा। उस दाते के द्वारा हाथ का स्पर्श होना एक आग की चिंगारी थी जो कि पापों के उस तथाकथित ढेर को जला देने के लिए पर्याप्त थी। जब उसके पाप जल गए तो उसकी बुद्धि के ऊपर से पापों की मैल का बोझ उतर गया तो वह गुरू जी के चरणों पर गिर पड़ा और अनुनय-विनय करने लग पड़ा कि हे पातशाह! मेरे ऊपर भी कृपा करो, मुझे भी सही मार्ग का अनुगामी बनाओ, मुझे भी भले कार्य सिखाओ और बुरे कार्यों से बचाकर, अपने चरणों के साथ जोड़ लो। हमारे अन्दर सही मार्ग पर चलने का कोई जोर नहीं है।

उस समय गुरू जी कृपा कर घर में आए आपके गले में से एक अलौकिक धुन उठी, मरदाने ने रवाब को छेड़ा और सतगुरू जी के मुखारविन्द से मारु राग में वैराग्य भरी सुर इस प्रकार से निकली -

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए॥
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ
तउ गुण नाही अंतु हरे ॥ 1 ॥
चित चेतसि की नही बावरिआ ॥
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
जाली रैनि जालु दिनु हूआ जेती घड़ी फाही तेती ॥
रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि
छूटसि मूड़े कवन गुणी ॥ 2 ॥
काइआ आरणु मनु विचि लोहा
पंच अगनि तितु लागि रही ॥
कोइले पाप पड़े तिसु उपरि
मनु जलिआ संनी चिंत भई ॥ 3 ॥
भइआ मनूरु कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिलै तिनेहा ॥
एकु नामु अंम्रितु ओहु देवै तउ नानक त्रिसटसि देहा॥
अंग - 990

वह दिव्य आवाज, मन के अन्दर धँस जाने वाले शबद के अर्थ गजब का प्रभाव छोड़ गए। उस बनिए का मन द्रवीभूत हो गया और समझ आ गई कि हम कर्म करने वाले जीव हैं, मन तथा बुद्धि होने के कारण हम समझते हैं कि हम जो कुछ भी करते हैं, वह बुरा और भला दो प्रकार का है। हम जो कुछ भी करते हैं, उसके द्वारा किए गए कर्मों का फल हमें बुरे या भले की तरफ प्रेरित करता है। बुरे कर्मों का जो स्वाद है, वह मानो हमारे लिए दाना डाला जाता है जैसे कि बहेलिया पक्षियों को फँसाने के लिए चोगा डालता है। अन्दर से हमारा स्वभाव बुरे कर्मों की तरफ हमारी रुचि को बनाता है और बाहरी तौर पर रसदायक भोग अपनी तरफ खींचते हैं। इस प्रकार से जीव फँसता चला जाता है और मन कठोर होता चला जाता है अर्थात हमारा मन उच्च रसों की तरफ से मरता चला जाता है और निम्न रसों की तरफ आकर्षित होता चला जाता है। जब मन निम्न रसों में धँस जाता है तो फिर साईं याद ही नहीं आता है। पूर्वकाल में यदि कोई शुभ कर्म किए होते हैं तो वे भी मददगार नहीं बन पाते हैं क्योंकि वे भी पाप रूपी कोयलों का सेक लगने के कारण जल जाते हैं। अतः जाल में फँस चुके पक्षी के आजाद हो जाने का या मृत हो चुके मन का पुनर्जीवित हो जाने की दवाई, केवल शुभ कर्म ही नहीं होते हैं, इसलिए मृत मन रूपी लोहे का जीवित मन रूपी सोने में परिवर्तित होने का केवल एक ही तरीका है कि सच्चा सतगुरू नाम रूपी अमृत का छींटा मार दे। नाम के सिमरन से मन, साईं की याद में टिकता है और साईं की याद ही साईं का मिलाप है। पाप कर्मों तथा निम्न कोटि के रसों ने हमारे और परमात्मा के बीच अविद्या का पर्दा खड़ा किया हुआ है। जब यह पर्दा टूट जाता है तो फिर दोनों का फासला समाप्त हो जाता है, फलस्वरूप अब साईं की शक्ति व उसकी सत्ता हमारे अन्दर आने लगती है तथा फिर हमारा मृत मन पुनर्जीवित हो जाता है, फिर यह ऊँचे रसों के अनुभव में आकर आत्म रूप बन जाता है।

शब्द के प्रभाव ने उस बनिए के दिल को पूर्णरूपेण द्रवीभूत कर दिया जिसके कारण से उसकी रुचि की दिशा ही बदल गई। अब उसके ख्याल शुभ दिशा में चल पड़े, फलस्वरूप वह गिड़गिड़ाता हुआ गुरू जी के चरणों पर गिर पड़ा और विनय करने लगा, हे दाता! दाता! मुझ पापी का उद्धार करो।

पूरे सतगुरू ने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा कहो वाहिगुरू! बस वाहिगुरू कहलाने की देर थी कि नाम का फव्वारा उसके अन्दर से फूट पड़ा। उन दोनों के रोम-रोम में नाम का प्रवाह चल पड़ा। इस प्रकार वे दोनों नाम सिमरन करने वाले गुरू जी के पक्के सिक्ख बने।

(शेष पृष्ठ 52 पर)

श्री गुरू नानक देव जी के 2019 में 550 वर्षीय मनाए जा रहे प्रकाश पर्व को समर्पित गुरू नानक वाणी पर आधारित श्रृंखलाबद्ध लेख श्री गुरू नानक देव जी की प्रमुख रचना 'आसा दी वार' में 'मानव संकट की चेतना'

डा. जगजीत सिंह

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 52)

धार्मिक भेष - परमात्मा की प्राप्ति तथा नैतिकता का व्यवहार भेषों को धारण कर लेने मात्र से प्राप्त नहीं हुआ करता है बल्कि परमात्मा का नाम सिमरन ही सच्चा मार्ग है। गुरू जी के समय बहुत सारे भेष प्रचलित थे। लोग इन भेषों को ही धर्म समझने लग पड़े थे। कुछेक प्रचलित भेष अधोलिखित प्रकार से थे जिनका खण्डन गुरवाणी में किया गया है -

1) ***लिखि लिखि पड़िआ, तेता कड़िआ।***

हउमै की तुष्टि के लिए विद्या या ज्ञान प्राप्त करना

2) ***बहु तीरथ भविआ, ते तो लविआ।***

तीर्थ यात्राओं से हउमै को बढ़ाना

3) ***बहु भेख कीआ, देही दुखु दीआ।*** (भेषों का पाखण्ड)

4) ***अंनु न खाइआ सादु गवाइआ।*** (व्रत)

5) ***बसत्र न पहिरै, अहिनिस कहरै।*** (नग्न साधू)

6) ***मोनि विगूता, किउ जागै गुर बिनु सूता।*** (मौन व्रत वाले साधू)

7) ***पग उपेताणा, आपणा कीआ कमाणा।*** (जैन साधू नंगे पैरों से ही विचरण करते हैं)

8) ***अलु मलु खाई, सिरि छाई पाई।*** (सरेवड़े कन्द मूल ही खाते हैं)

9) ***रहै बेबाणी मड़ी मसाणी। अंध न जाणै फिरि पछुताणी*** (जादू टोने, टोटके, ताबीज, यन्त्र-मन्त्र व तन्त्र वाले साधू जो कि निर्जन इलाकों या श्मशानों में रहते हैं)

10) ***जती सदावहि जुगति न जाणहि छडि बहहि घर बारु।*** (त्यागी, सन्यासी)

मुसलमानों की शरह व शरीयत का खण्डन - गुरू जी ने न केवल हिन्दू धर्म तथा समाज की गलत रस्मों व रीतियों का ही खण्डन किया है बल्कि हाकिम श्रेणी के जुल्म व अत्याचारों की भी डटकर खबर ली तथा इस्लामी शरह व शरीअत की गलत मान्यताओं का भी निर्भीक खण्डन किया। इन गलत कर्मकाण्डों के कारण ही हिन्दुओं व मुसलमानों में पारस्परिक वैर व विरोध बढ़ता ही जा रहा था और इन फोकट रीतियों को ही धर्म समझ कर, कई प्रकार के अत्याचार हो रहे थे। कुछेक ऐसी रीतियों का जिक्र करना यहाँ पर जरूरी है -

क) मुर्दा दबाना अथवा जलाना - शरीअत के अनुसार मुसलमान लोग मुर्दे को जमीन में दबाते हैं। उनका ख्याल है कि कयामत के दिन इजरायल फरिश्ता तुर बजाएगा और प्रलय हो जाएगी, फिर कब्रों में से मुर्दे उठेंगे और खुदा इनके अन्दर प्राण डाल देगा और किए गए अमलों का बदला लेगा। जो कट्टर मुसलमान थे, वे हिन्दुओं की इसलिए भी निन्दा करते थे कि ये मुर्दे को जला देते हैं जिस कारण उनकी देह को भी कितनी तकलीफ होती है तथा इनके अन्दर दोबारा जान भी नहीं डाली जा सकती है। गुरू जी दलील के माध्यम से बतलाते हैं, मुर्दे से सम्बन्धित यह लड़ाई बहुत ही निरर्थक व आधारहीन है। वास्तविकता तो यह है कि मुर्दे को कोई दुख नहीं होता है चाहे उसे जलाओ अथवा दबाओ। यदि हिन्दू मुर्दा जलकर राख में परिवर्तित हो जाता है तो मुसलमान मुर्दा भी मिट्टी के साथ मिट्टी होकर कुम्हार की ईंटों के रूप में

परिवर्तित हो जाता है और ईंटों के रूप में आग में पकाया जाता है। यदि भगवान ने मुर्दे के अन्दर रूह को डालना ही है तो सड़ी हुई मिट्टी या जली हुई मिट्टी दोनों में रूह को डालना उसके लिए कोई मुश्किल कार्य नहीं हो सकता है। अत: यह सारी ही मान्यता निरर्थक व आधारहीन है -

मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर ॥
घड़ि भाँडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ॥
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ॥
अंग - 466

ख) मुसलमान पाँच समय की नमाज पढ़ने को ही धर्म समझता है लेकिन अपने चरित्र को नमाज के साथ नहीं जोड़ता है। एक तरफ अत्याचार करना, लोगों को लूटना, जुल्म करना, प्रजा का खून पीना और दूसरी तरफ नमाजें पढ़नी, यह किसी प्रकार का धर्म है?

माणस खाणे करहि निवाज ॥
छुरी वगाईन तिन गलि ताग ॥ *अंग - 471*

राजनैतिक जुल्म तथा अत्याचार का खण्डन

1) मुसलमान हाकिम श्रेणी के धर्म में भी अत्यन्त गिरावट आ चुकी थी, इसलिए मुसलमान हाकिम लालची, दुराचारी, झुठे तथा कुकर्मी हो चुके थे जो कि प्रजा के ऊपर अनेकों प्रकार के अत्याचार कर रहे थे। इनका जिक्र गुरू जी ने अपनी वाणी में बहुत ही जगहों पर किया है। कुछ हवाले 'आसा दी वार' में भी उपलब्ध हैं -

लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु ॥
कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु ॥
अंग - 469

2) न्याय त्याग कर मनभावन हुक्म करने वाले राजनैतिक अहिलकारों को गुरू जी चेतावनी देते हुए कहते हैं कि उन्हें दोजख (नर्कों) की आग में जलना पड़ेगा -

हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा ॥
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥
करि अउगण पछोतावणा ॥ *अंग - 471*

3) मुसलमान हाकिमों को ताकीद की है कि खुदा के खौफ में रह कर न्याय करें, खुदा के कोपभाजन से डरें क्योंकि खुदा की नजर हट जाने से एक सुल्तान भी भिखारी बन सकता है और भीख माँगने से भी लाचार हो सकता है-

नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ॥
दरि मंगनि भिख न पाइदा ॥ *अंग - 472*

इस प्रकार से 'आसा दी वार' उस समय के मनुष्य का धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक संकट का चित्रण है और मनुष्य को इस मानव संकट में से निकालने का एक उपाय भी है। हमें अपने अन्दर झाँक कर देखना चाहिए कि हम लोग, जो कि स्वयं को श्री गुरू नानक देव जी के अनुसरणकर्ता समझते हैं, कहीं उन्हीं धार्मिक व सामाजिक कर्मकाण्डों, रस्मों व रीति रिवाजों में ही उलझ कर तो नहीं रह गए जिनमें से गुरू जी ने हमें बाहर निकाला था।

2) आसा दी वार - अध्यात्मिक चेतना

पंजाब सदियों से बाहरी हमलावरों का रणक्षेत्र बना रहा है। नित्य प्रतिदिन के हमलावरों की मुहिमों के कारण पंजाबी लोग कभी भी आलसी बनकर सुख की नींद नहीं सोए। पंजाबी नवयुवकों को रणक्षेत्रों में जूझने के लिए प्रेरित करने के लिए, उनकी हिम्मत में वृद्धि करने के लिए तथा उनके स्वाभिमान को जागृत रखने के लिए पंजाबी कवियों ने वारों की रचना की, अरबी, फारसी में वीर रस युक्त रचना के 'कसीदे' तथा 'मरसीए' लिखे गए। कुछ 'जंगनामे' भी लिखे गए। अंग्रेजी भाषा में बै-लडज़ रूप लिखे गए लेकिन 'वार' ही ऐसा शुद्ध काव्य रूप है जिसमें विशुद्ध बहादुरी के कारनामे लिखे गए।

श्री गुरू नानक देव जी से पहले 'वार' पंजाबी जीवन का हरमन प्यारा काव्य रूप स्वीकार्य हो चुका था। भट्ट, मिरासी, भराई आदि इन वारों को राज-दरबारों, मेलों, जश्नों व गांवों की महिफिलों में गाया करते थे। इन वारों में योद्धाओं, शूरवीरों, बहादुरों, सरदारों तथा राजाओं की शूरवीरता तथा देश भक्ति के किस्से गाए जाते थे। इस प्रकार की अनेकों वारें पूर्व नानक काल में लिखी गईं जिनमें नौ वारों की धुनियों को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में प्राप्त वारों की धुनियों के लिए स्वीकार्य किया गया जैसे कि 'आसा दी वार' के निम्न शीर्षक से प्रत्यक्ष है -

आसा महला 1
वार सलोका नालि सलोक भी महले पहिले के लिखे टुंडे असराजै की धुनी।

श्री गुरू नानक देव जी ने लोकप्रिय लोक काव्य रूप 'वार' को अपने विचारों के प्रकटीकरण का माध्यम बनाया। आप प्रमुख रूप से रहस्यवादी सन्त गुरू थे तथा आपकी रचना की प्रमुख विचारधारा अध्यात्मिक है लेकिन अब तक 'वार' का विषय शूरवीरता तथा युद्ध वगैरह ही हुआ करता

था। आपने पहली वार अध्यात्मवाद को वार का विषय बनाया तथा शारीरिक, आत्मिक व मानसिक वीरता की विचारधारा प्रस्तुत की। आप का विचार था कि मनुष्य की वास्तविक बहादुरी मन पर विजय प्राप्त करना है, विषय-विकारों के साथ जूझना है तथा विचारों पर नियन्त्रण स्थापित करके उन्हें जीतना है। यदि मन और आत्मा कमजोर हो तो शारीरिक बल भी निरर्थक ही होता है। इसलिए गुरू जी ने सांसारिक युद्धों की वीरता की जगह अध्यात्मिक शूरवीरता को अपनी वारों का विषय बनाया। आमतौर पर वार में 'नायक' और 'खलनायक' का युद्ध दर्शाया जाता है। नायक के गुणों तथा खलनायक के अवगुणों को प्रकट किया जाता है यानि कि नायक की बहादुरी की प्रशंसा की जाती है। गुरू जी ने आसा दी वार में तथा अन्य अध्यात्मिक वारों में 'गुरुमुख' को प्रस्तुत किया है। गुरुमुख के सहायक सेनापति तथा सिपाही दैवी गुण हैं - सत्य, सन्तोष, दया, धर्म, नाम-सिमरन तथा परोपकार आदि। दूसरी तरफ मनमुख की सहायक शक्तियाँ हैं - हउमै, काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वैत, वैर, विरोध इत्यादि। अन्त में गुरुमुख की जीत होती है और उसे गुरू का प्यार भरा आशीर्वाद तथा उसकी शाबाश प्राप्त होती है। इसके विपरीत मनमुख हार कर व अपने जन्म को व्यर्थ गंवा कर संसार से शर्मिन्दा होकर जाता है। गुरुमुख जीवन मुक्त होकर सच्ची दरगाह में सुरखरू होकर पहुँचता है। 'आसा दी वार' का पहला रूप केवल चौबीस पउड़ियाँ थीं। पउड़ी, वार का विशेष छन्द होता है। गुरू जी ने इसे कायम रखा इन पउड़ियों का विषय अध्यात्मवाद है। गुरू अरजन देव जी ने श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की सम्पादना के समय इसके साथ 44+15=59 श्लोक भी मिला दिए, जिनका विषय राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक गलत रीतियों, रस्मों व रिवाजों की सख्त आलोचना है। इनमें गुरू जी ने अत्याचारी हाकिमों व अहिलकारों की लोभी, कामी, अत्याचारी व मन्द रुचियों का पर्दाफाश किया है। धर्म के ठेकेदारों, काजियों, मुल्लाओं, योगियों व पण्डितों के निम्न आचरणों, लोभी भावनाओं, रिश्वत लेकर गरीबों को दोषी सिद्ध करने के आचरण का उपयुक्त विश्लेषण किया है। समाज में प्रचलित बुरी रस्मों, रिवाजों, पाखण्डों व कर्मकाण्डीय रीतियों की सख्त आलोचना की है तथा सबको परमात्मा के प्यार में जुड़ने की प्रेरणा की है। स्त्री वर्ग के साथ सदियों से हो रहे अन्याय को रद्द करके उसे सम्माननीय रुतबा प्रदान किया। अध्यात्मिक वारों को लिखने में श्री गुरू नानक देव जी ने पहल की। आसा दी वार के अतिरिक्त ग्यारह अन्य वारें आपने लिखीं, जिनमें मलार की वार, माझ की वार, श्री राग की वार, विहागड़े की वार, वडहंस की वार, सोरठ, सूही, बिलावल, रामकली, मारू तथा सारंग की वार प्रमुख हैं। इन वारों में पउड़ियों के साथ, जगह-जगह पर श्लोक भी, नगीनों की तरह से जड़े हुए हैं। ज्यादातर श्लोक श्री गुरू नानक देव जी के ही हैं लेकिन थोड़े बहुत श्लोक दूसरी पातशाहियों के भी हैं। आसा दी वार में 15 श्लोक गुरू अंगद देव जी के हैं, मलार में 5 तथा माझ की वार में 2 और इसी प्रकार से अन्य वारों में भी तीसरे चौथे तथा पाँचवें गुरू जी के श्लोक ही प्राप्त हैं। श्री गुरू नानक देव जी, पंजाबी साहित्य में अध्यात्मिक वारों के मुखी संचालक हैं। आप जी से प्रेरणा लेकर अन्य गुरू साहिबानों ने भी अध्यात्मिक वारें लिखीं। सत्ता तथा बलवंड ने भी एक वार लिखी। ये सभी वारें श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर दर्ज हैं। श्री गुरू नानक देव जी द्वारा प्रचलित लोकप्रिय काव्य रूप से प्रभावित होकर ही भाई गुरदास जी ने 39 अध्यात्मिक वारें लिखीं। इस प्रकार से 'आसा दी वार' के साथ पंजाबी में अध्यात्मिक वारें लिखने की परम्परा का श्री गणेश हुआ जो कि आज पंजाबी साहित्य की अमीर विरासत है। वारों की इस परम्परा में श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की महान रचना 'चंडी दी वार' है जिसमें नेकी तथा बदी के आदिकाल से चले आ रहे संघर्ष को, देवताओं और दैत्यों के युद्ध के माध्यम से वर्णित किया गया है। वारों का यह सिलसिला वर्तमान समय तक भी कायम है।

(पृष्ठ 49 का शेष)

जीव कर्म करता है और उसके द्वारा किए गए कर्मों के फल लगते हैं, लेकिन यदि वह नाम सिमरन में सच्चे मन से लग जाता है तो फिर कर्म व उनके फल जल जाते हैं। नाम का जो मार्ग है, यह प्रेम मार्ग है, ऊँचे रस कर मार्ग है और कर्मों से ऊँचा मार्ग है। नाम, पहले मन की मैल को साफ करता है, मति में से पापों को धोकर बाहर निकालता है, फलस्वरूप आत्मा स्वच्छ हो जाती है और फिर वही नाम अमृत का सा रस देता है -

प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ ॥
अंम्रित नामु रिद माहि समाइ ॥ अंग - 263

सूचना - इसी प्रकार से कुछ दिन वहाँ बिताने के बाद अभी चौमासा चल ही रहा था कि गुरू जी ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

'चलता'

स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार
(Inspired Thoughts of Swami Ram)

डा. स्वामी राम जी

अनुवादक - शमशेर सिंह 'कोमल', एम. ए., एम. फिल.

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मार्च, पृष्ठ - 54)

अन्दर के केन्द्र को याद रखो

जब भी तुम्हें समय मिले तो तुम चुप करके बैठो, स्वयं को एकाग्र करो और बस इतना याद करना शुरू करो कि अन्दर का केन्द्र बहुत गहरा है जो कि तुम्हारी सोच और तुम्हारी पहुँच से बाहर है। मनुष्य तो किसी भी ऊँची और सूक्ष्म वस्तु के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकता है, वह तो केवल अपने आप को ही देख सकता है। सब से सुन्दर मूर्ति जिसे वह देख सकता है, वह तो उसकी स्वयं की ही मूर्ति होती है। जब भी वे परमात्मा के बारे में सोचते हैं तो वे किसी न किसी मनुष्य के बारे में ही सोचते हैं। वे सोचते हैं कि एक न एक दिन परमात्मा मेरे आगे आकर खड़ा हो जाएगा और मुझे जागृति प्रदान कर देगा। मैं तो बस स्वयं को उस दिन के लिए तैयार कर रहा हूँ और परमात्मा को देखने के लिए उतावला हूँ। इस प्रकार से लोग केवल एक तरंग सी अपने मन में बना लेते हैं और उस एक मूर्ति के ही श्रद्धालु बन जाते हैं। ऐसा करके थोड़ी देर तक तो वह ठीक रह सकता है और उसे अच्छा लग सकता है, लेकिन यह उसे मुक्त नहीं करवा सकता है।

जब हम सत्य को जानना शुरू कर देते हैं, जब हम आन्तरिक सच्चाई को समझने की कोशिश करते हैं, तो फिर हमें समझ आती है कि खुशी के बारे में, शान्ति के बारे में, ज्ञान के बारे में, चिन्ता कितनी हानिकारक है? यदि हम शान्ति के लिए तीव्र इच्छा करें और उसे त्याग न सकें तो फिर हम कभी भी शान्त नहीं हो सकते हैं, प्रसन्न नहीं हो सकते हैं और न ही हमें ज्ञान हो सकता है क्योंकि इन सबकी इच्छा ही हमें तंग करती रहेगी। वास्तव में हमें परमात्मा के बारे में कोई भी अनुभव तब तक प्राप्त नहीं हो सकता है, जब तक कि हम अपने मन को शान्त नहीं करते हैं। क्योंकि जब तक हमारे अन्दर इच्छाएँ रहेंगी, तब तक वे हमारे मन को खण्ड-खण्ड करती रहेंगी। अतः हमें आवश्यकता है, अपनी इच्छाओं को, दूर करके, शान्त होने की। इच्छा ही संताप की जड़ है और इच्छामुक्त होने के लिए अन्तर्मुखी ध्यान करने की जरूरत है।

यह चेतना तुम्हें उसी समय प्राप्त हो सकती है, जब तुम जीवन जीने की कला को सीख लेते हो। वह कला क्या है? वह कला है शान्त होना, स्थिर होना और खुश होना। यह प्राप्त करने के बाद तुम अपनी सामर्थ्य को देखोगे। अपनी चेतनता को विस्तृत करके, अपने मन को शुद्ध करके, अपने कार्यों को, अपनी कथनी को शुद्ध करके, तुम धीरे-धीरे अपनी सामर्थ्य को बढ़ा सकते हो और असीम की प्राप्ति कर सकते हो।

यह सब कुछ करने के लिए तुम्हें अपनी इच्छाओं पर पूरी तरह से नियन्त्रण स्थापित करना पड़ेगा। इच्छा मुक्त होने का तात्पर्य यह नहीं है कि तुम खाओ ही नहीं, तुम सोओ ही नहीं और न ही तुम सांसारिक चीजों का प्रयोग करो बल्कि तुम यह सब कुछ करो लेकिन ये सारी चीजें तुम्हारी लक्ष्य की प्राप्ति में, तुम्हारे ज्ञान की प्राप्ति में, बाधक नहीं बननी चाहिए। इन सबका प्रयोग तुम ज्ञान की वृद्धि के लिए करो। ये तुम्हारी जागृति में, ज्ञान प्राप्ति में बाधक नहीं बननी चाहिए। सांसारिक इच्छाएँ तुम्हें उदासी दे सकती हैं। इन सबके कारण तुम्हारी शक्ति खण्ड-खण्ड हो जाती हैं और तुम्हारी शक्ति निरर्थक चली जाती है। आवश्यकता है कि तुम अपने जीवन मनोरथ के लिए पूरी तरह से चैतन्य रहो। तुम्हें प्रत्येक समय सत्य के लिए चेतन होकर सतर्क रहना चाहिए और अपने लक्ष्य को प्रत्येक समय अपने सामने रखना चाहिए। तुम्हें अपने सामने केवल एक ही इच्छा रखनी चाहिए और वह है सत्य या ज्ञान की प्राप्ति। इस एक इच्छा के द्वारा तुम अपने मन को दिशा दे सकते हो, अपनी सोच व अपने काम

को दिशा दे सकते हो तथा उसे इच्छा रहित बना सकते हो।

किसी भी वस्तु के लिए निवेदन मत करो

वास्तव में इच्छा ही मन को छोटा बनाती है, स्वार्थी बनाती है, अहंकारी बनाती है तथा हउमै में लाती है। बच्चे, जब बालू का घर बनाते हैं तो वे सोचते हैं कि यह बिल्कुल असली है। यह तो ठीक है कि बच्चों को कोई समझा नहीं सकता है कि असली नहीं है लेकिन अन्त में उन्हें सच्चाई का पता लग ही जाता है। जब वे घर बना-बना कर थक जाते हैं तो वे समझ ही जाते हैं कि ये स्थाई नहीं है। ठीक इसी प्रकार से हम अपनी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के बहुत सारे प्रयोग करते हैं। पहले एक चीज से खुश हो जाते हैं, फिर दूसरी चीज से, फिर तीसरी चीज से, लेकिन अन्त में हम समझ जाते हैं कि ये तो जीवन रूपी झील की बूँदें हैं, कुछ यहाँ से पी, कुछ वहाँ से पी, पूरा पानी पीना नहीं है। हमारी इच्छाएँ तो कभी भी पूरी नहीं हो पाती है। ये तो और अधिक, और अधिक बढ़ती ही चली जाती है। इच्छाओं की पूर्ति करनी, परमात्मा से इनकी पूर्ति हेतु विनय करनी, अन्त में हमें गुलाम व दुर्बल बना देती है। आवश्यकता है सब्र व सन्तोष की। हमें कुछ भी नहीं माँगना चाहिए और हमें वही मिलेगा जो कि हमारे लिए लाभकारी होगा।

जब हम सत्य की प्राप्ति कर लेते हैं तो फिर हमारी सारी माँगें स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं, सारी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं, फलस्वरूप मन प्रत्येक समस्या से मुक्त हो जाता है, प्रत्येक दुविधा समाप्त हो जाती है। जब मन इन सबसे मुक्त हो जाता है, तो फिर वह आत्म मार्ग के लिए, ज्ञान प्राप्ति के लिए, तैयार होता है। क्या तुमने कभी अपने जीवन में, एकाध घड़ी के लिए भी इच्छा मुक्त होकर देखा है? कभी बहुत थोड़े समय के लिए स्वयं को कहो, उसे सलाह दो कि तुम इच्छा मुक्त होकर देखो। फिर तुम देखोगे कि अब तुम्हारा मन आनन्दित होकर विस्माद में आ गया है। जब हम मन को एक तरफ ले जाते हैं, उसे इच्छा मुक्त कर लेते हैं तो उस समय हम मैडिटेशन की अवस्था में पहुँच जाते हैं। मैडिटेशन का उद्देश्य ही है हमें इच्छा-मुक्ति की उच्चावस्था पर ले जाना। अरब देश की एक कहानी है, जिसके माध्यम से यह बात हमें अच्छी तरह से समझ में आ जाती है। एक स्वामी जी, जो कि अपनी भक्ति के नियमों के बहुत पक्के थे, समय पर अपनी पूजा, मन्त्र व मैडिटेशन किया करते थे। एक दिन उन्होंने अपनी सारी वह नियमावली पूरी तरह से छोड़ दी। अब लोग उनके पास आए और कहने लगे, स्वामी जी! यह सब कैसे हो गया? तुमने वह सब कुछ क्यों छोड़ दिया? वे कहने लगे, जब तुम प्रार्थना कर-करके बहुत कुछ माँगने लग जाते हो तो फिर तुम्हारी माँगने की आदत ही बन जाती है, फिर तुम हमेशा माँगते ही रहते हो कि मुझे यह दो, मुझे वह दो। चूँकि अब मुझे सत्य की प्राप्ति हो गई है, इसलिए अब मैं क्या माँगूं? इसलिए मैंने अब प्रार्थना करनी बन्द कर दी कि मुझे यह दे दो, मुझे वह दे दो।

वास्तव में जब तुम मन को शान्त करने की कोशिश करते हो और उसके लिए खूब प्रयत्न करते हो लेकिन तुम देखोगे कि सुबह से शाम तक कोई न कोई इच्छा मन में आती ही रहती है। इच्छा ही समस्त प्रेरणाओं की जड़ है। यानि कि हमारी सोच की, बोलने की, कथनी व करनी की, हमारे भावों आदि की प्रेरणा, इच्छा ही है। हमारी लाखों इच्छाएँ हैं लेकिन हमारी सबसे गहरी इच्छा है कि काश! मैं परमात्मा को देख पाता। हम में से अधिकांश लोगों के लिए चाहे यह बहुत हल्की सी, या दबी हुई सी इच्छा होती है जिसे कि हम अपनी अन्य सांसारिक इच्छाओं के नीचे दबाकर रखते हैं लेकिन फिर भी यह किसी समय अत्यन्त प्रबल हो जाती है। दरअस्ल हमारी सांसारिक इच्छाएँ इतनी अधिक प्रबल होती हैं कि वे हमें परमात्मा के बारे में सोचने ही नहीं देती हैं लेकिन जिस समय परमात्मा को जानने की इच्छा जोर पकड़ती है तो फिर अन्य सारी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। अन्त में, यह इच्छा पूर्ण उसी समय होती है, जिस समय तुम पूरी तरह से इच्छा मुक्त हो जाते हो।

जब एक स्वामी संसार का त्याग करता है तो उस समय उसकी ज्ञान प्राप्ति की इच्छा जागृत होती है। यह सीखता है, वह सीखता है और अन्त में वह जान जाता है कि यह सीखने की इच्छा भी एक विघ्न ही है। इसकी वजह से तुम ऊँची प्राप्ति नहीं कर सकते हो। गाँधी जी ने हमेशा एक बात कही है कि तुम अपनी इच्छाओं को शून्य कर दो, तुम्हें प्राप्ति हो जाएगी। जब तक तुम्हारी कोई भी इच्छा है, तुम दुखी हो और तुम्हारा अन्दर शान्त नहीं है। इसके विपरीत जब तुम अपने अन्दर के केन्द्र पर पहुँच जाते हो तो तुम्हारा मन शान्त हो जाता है। अतः तुम मैडिटेशन करते रहो, अभ्यास करते रहो, अन्त में एक दिन तुम्हारा मन अवश्य ही शान्त हो जाएगा। *'चलता'*

(पृष्ठ 40 का शेष)

भले ही उसकी दरगाह की मुट्ठी भर खाक, रसायन बना देती है और एक भिखारी को सात विलायतों का बादशाह बना देती है।

खाकि दरगाहि तू सद ताज असत बहिरि फरकि मन
आसीअम गर दिल हवाए ताजो अफसर मी कुनद।

मेरे सिर के लिए तुम्हारी दरगाह की धूल सैंकड़ों ताजों के सदृश्य है इसलिए मैं तो गुनहागार हो जाऊँगा यदि मेरा दिल फिर भी ताज व तख्त की लालसा करे।

कीमआगर गर जि मिस साजद तीलाइ दूर नीसत
तालिबि ह्क जक रा खुरशीदि अनवर मी कुनद।

यदि कारीगर तांबे से सोना बना लेता है तो फिर यह असम्भव नहीं है कि परमात्मा का तालाब मिट्टी को नूर से भरा हुआ सूर्य बना ले।

शिथरि गोया हर कसे कू बिशनवद अज जानो दिल
कै दिलश परवाए लाअलि दुकानि गोहर मी कुनद।

गोया के शेयर जो भी दिलोजान से सुनता है उसका दिल फिर मोतियों की दुकान के लालों की कब परवाह करता है?

'चलता'

रतवाड़ा साहिब में महापुरुषों के प्रवचनों का कार्यक्रम

प्रत्येक रविवार रतवाड़ा साहिब - (12.00 बजे से 4.00 बजे तक)

पूर्णमाशी - 18 मई, दिन शनिवार।

(रात्रि 07.00 बजे से 10.00 बजे तक)

संक्रान्ति - जेठि, 15 मई, दिन बुद्धवार। (प्रातः 5.30 बजे से 8.00 बजे तक)

अमृत संचार - माह के प्रथम रविवार को दिन के 11.00 बजे होता है।

INTERNET MEDIA AND LIVE TELECAST

Website : www.ratwarasahib.in

Website : www.ratwarasahib.org

Instagram : RATWARA SAHIB (https://instagram.com/ratwara.sahib/)

You Tube : https://www.youtube.com/user/babalakhbirsingh

Facebook : https://www.facebook.com/ratwarasahib1

Twitter : https://mobile.twitter.com/ratwarasahib13

Live Audio Link 1 - https://www.awdio.com/Ratwara Sahib

Live Audio Link 2 - https://mixlr.com/ratwara-sahib

E-mail :- sratwarasahib.in@gmail.com

Contact - 9569455861, 9417912900, 9814612900

आवश्यक निवेदन

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूवल या दसवंद पंजाब एंड सिंध बैंक की किसी भी शाखा द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में भेजी जा सकती है।

भारत (INDIA)

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूवल भेजने के लिए -

VGRMCT / Atam Marg Magazine
S/B A/C No. 12861000000003 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

दसवंद भेजने के लिए -

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
SB A/C No. 12861100000005 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

विदेश (ABROAD)

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
Punjab National Bank SB A/C No. 0779000100179603
RTGS/IFSC Code - PUNB0077900 Branch Code - 077900

यदि चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा राशि भेजनी हो तो ऊपरलिखित खातों अनुसार Gurdwara Ishar Parkash Ratwara Sahib, P.O. Mullanpur Garibdas. Distt S.A.S. Nagar (Mohali) - 140901 पर भेजने की कृपा करें। यदि Online राशि भेजनी हो तो राशि की जानकारी देते समय अपना नाम व पूरा पता मोबाइल नं. +91-98889-10777 पर SMS भेजें जी।

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि यदि आपने अभी तक आत्म मार्ग मासिक पत्रिका की सदस्यता ग्रहण नहीं की है तो आप कृप्या अधोलिखित प्रारूप पत्र को भरकर सदस्यता ग्रहण करने की कृपा करें। यदि आप पहले से ही सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं, तो पुनर्नवीनीकरण हेतु इस प्रारूप पत्र के साथ आवश्यक चैक/ड्राफ्ट "VGRMCT/ATAM MARG MAGAZINE" के नाम पर प्रेषित करने की कृपा करें।

Subscription form ✓ ☐ नई सदस्यता ☐ पुनर्नवीनीकरण ☐ आजीवन सदस्यता

within India

Subscription Period	By Ordinary Post/Cheque	By Registered Post/Cheque
1 Year	Rs. 300/320	
3 Year	Rs. 750/770	
5 Year	Rs. 1200/1220	
Life	Rs 3000/3020	

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 $
Europ	50 Euro	500 Euro
Australia	80 Aus $	800 Aus $

जनवरी ☐ फरवरी ☐ मार्च ☐ अप्रैल ☐ मई ☐ जून ☐ जुलाई ☐ अगस्त ☐ सितम्बर ☐ अक्तूबर ☐ नवम्बर ☐ दिसम्बर ☐

नाम/Name पता/Address...

....

..............Pin Code............. Phone .... E-mail :...........................

सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल, रतवाड़ा साहिब

समय - सुबह 9.30 बजे से 2.00 बजे तक (रविवार से शुक्रवार)

डाक्टरों का समय - सुबह 10.00 बजे से 12.00 बजे तक

दूरभाष नं. 98786-95178, 92176-93845

डा. का नाम	विशेषज्ञ	दिन
1. डा. जसबीर कौर	जनरल मैडिसन	सोमवार
2. डा. गुरिंदर कौर कंग	एम. डी. (गाइनी)	सोमवार
3. डा. कुलदीप सिंह कंग	एम. डी. (आँखों के विशेषज्ञ)	सोमवार
4. डा. हरबंस सिंह	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	मंगलवार
5. डा. तेजिंदर सिंह	जनरल मैडिसन	मंगलवार
6. श्री माइकल जी	एक्स-रे विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
7. डा. भगत सिंह मक्कड़	जनरल मैडिसन/ई.एन.टी./ब्लॅड शूगर आदि	बुद्धवार
8. डा. जे. एस. गुजराल	जनरल मैडिसन/शिशु रोग विशेषज्ञ	बुद्धवार
9. डा. आर. एस. संधू	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	वीरवार
10. डा. संतोष अनेजा	जनरल मैडिसन	वीरवार
11. डा. एस. के. बांसल	जनरल मैडिसन	शुक्रवार
12. डा. बरिन्दर सिंह	जनरल मैडिसन तथा त्वचा रोग विशेषज्ञ, एअरो स्पेस मैडिसन	शुक्रवार
13. डा. भगत सिंह मक्कड़	जनरल मैडिसन/ई.एन.टी./ब्लॅड शूगर आदि	रविवार
14. डा. जिंदल	जनरल मैडिसन	रविवार
15. डा. गुरप्रीत कौर गिल	होम्योपैथिक	बुद्धवार

-: लैबोरेटरी टैस्ट तथा अन्य सुविधाएँ :-

1. खून टैस्ट, 2. सारे खून सैल काउंट टैस्ट 3. ब्लड शुगर टैस्ट, 4, किडनी टैस्ट, 5. लीवर टैस्ट, 6. लिपिड परोफाइल टैस्ट, 7. थायराइड टैस्ट, 8. हिमोग्लोबिन टैस्ट, 9. पेशाब टैस्ट, 10. स्टूल टैस्ट, 11. ई.सी.जी., 12. एक्स-रे (क्ष-किरण)

सारे लैबोरेटरी टैस्ट आधे शुल्क पर किये जाते हैं तथा मरीज को दवाई मुफ्त दी जाती है।

प्रत्येक रविवार को अस्पताल खुला रहेगा। समय 11.00 से 1.00 बजे तक। प्रत्येक शनिवार को अस्पताल बन्द रहेगा।

विश्व गुरमत रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट

के मुख्य संस्थापक प्यारे महापुरुष सन्त बाबा वरियाम सिंह जी द्वारा लिखित व प्रकाशित पुस्तकें

यह पुस्तकें श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल रूप में स्पष्ट करके जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी विषय वस्तु के रूप में नाम, सेवा व स्मरण की विधियों को प्रस्तुत करते हुए जन साधारण की भाषा का अत्यन्त सरल, मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रयोग किया गया है। यह दुर्लभ पुस्तकें, प्रत्येक जिज्ञासु व साधक के लिए एक अमूल्य निधि के रूप में हैं। अध्यात्मिक सुख व शान्ति प्राप्त करने हेतु आप इन्हें प्राप्त करके स्वयं पढ़ें तथा अन्य श्रद्धालुजनों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। यह सभी पुस्तकें गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहब में आपकी सेवार्थ उपलब्ध हैं -

हिन्दी	
1. सुरति शबद मार्ग	70/-
2. किव कुड़ै तुटै पालि	35/-
3. बात अगंम की - सात भागों में	400/-
4. किव सचिआरा होइए - भाग पहला	35/-
5. किव सचिआरा होइए - भाग दूसरा	65/-
6. किव सचिआरा होइए - भाग तीसरा	100/-
7. होवै आनन्द घणा	30/-
8. बाबाणियाँ कहानियाँ	50/-
9. सुरतिआं उपजै चाउ	40/-
10. सर्व प्रिय गुरू गोबिंद सिंह जी	10/-
11. भक्त प्रहलाद	10/-
12. अमृत फुहार	10/-
13. अगम अगोचर का मार्ग	70/-
14. जपुजी साहिब सटीक	15/-
15. अमर ज्योतियाँ	15/-
16. अमर गाथा	100/-
17. वैशाखी	10/-
18. साजन चले प्यारिआ	10/-
19. अविनाशी ज्योति - भाग 1	90/-
20. रूहानी गुलदस्ता	70/-
21. चउथै पहरि सबाह कै	60/-

English Version	Price
1. Baisakhi	Rs. 5/-
2. How Rend The Veil of Untruth	Rs. 70/-
C. Discourses on the Beyond -1	Rs 50/-
4. Discourses on the Beyond -2	Rs. 50/-
5. Discourses on the Beyond -3	Rs. 50/-
6. Discourses on the Beyond -4	Rs. 60/-
7. Discourses on the Beyond -5	Rs. 60/-
8. The way to the imperceptible	Rs. 80/-
9. The Lights Immortal	Rs. 20/-
10. Transcendental Bliss	Rs. 70/-
11. How to Know Thy Real Self-(Vol-1)	Rs. 80/-
12. How to Know Thy Real Self-(Vol-2)	Rs. 80/-
13. How to Know Thy Real Self-(Vol-3)	Rs. 110/-
14. The Dawn of Khalsa Ideals	Rs. 10/-
15. A Glimpse of His Holiness - Baba ji	Rs. 5/-
16. Divine Word Contemplation Path	Rs. 150/-
17. The Story of Immortality	Rs. 260/-
18. Why not Contemplate the Lord	Rs. 200/-

ऊपरलिखित पुस्तकें आप जी मनीआर्डर, चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा रतवाड़ा साहिब से मंगवा सकते हैं या ट्रस्ट के अकाउंट में राशि जमां करवा कर मोबाइल नं. 9417214391, 9592009106, 9417214379 पर सूचित कर सकते हैं। **Bank Name : Pb & Sind Bank, A/c Name. VGRMCT/Atam Marg Magazine, S/B A/C No. 12861000000003, RTGS/IFSC Code - PSIB0021286, Branch Code - C1286**

सन्त बाबा हरपाल सिंह जी द्वारा अमेरिका प्रचार फेरी के दौरान पृथक-पृथक गुरुद्वारा साहिबों में किए गए कीर्तन प्रचार के मनोहरी दृश्य।

Guru Nanak Society of Greater Cincinnati Ohio

Indiana

Gurdwara Sikh Satsang of Indianapolis

Sikh Temple of North Texas

सन्त महाराज रतवाड़ा साहिब वालों के
जन्म दिवस सम्बन्धी

गुरमति
रूहानी समागम

17 जून

सन्त बाबा वरियाम सिंह जी महाराज
रतवाड़ा साहिब

समय : प्रातः 10.00 बजे से सायं 4.00 बजे तक

रतवाड़ा साहिब

आत्म मार्ग के समस्त पाठकों तथा संगत को, समागम में पहुँचने के लिए हार्दिक निवेदन